* श्री *

धार्मिक परीक्षाबोर्ड
रतलाम की

प्रवेशिका परीक्षा की पाठ्य पुस्तक

प्रथम भाग

(प्रथमखण्ड के लिए)

सम्पादक और प्रकाशक —

बालचन्द श्रीश्रीमाल

प्राप्ति स्थान —

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज
की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक मण्डल,
रतलाम

मुद्रक—
के हमीरमल लूणिया
अध्यक्ष-दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर

प्रथमवार	सम्वत्	मूल्य
१०००	१९९५	।=)

॥ श्री ॥

आवश्यक निवेदन

"धार्मिक परीक्षा बोर्ड रतलाम" को स्थापित हुए आठ वर्ष हुए। प्रारम्भ में इस परीक्षा का पाठ्यक्रम परिस्थिति को दृष्टि में रखकर बनाया गया था, और वह पाठ्यक्रम समाज के विद्वानों को भी बता दिया गया था। पश्चात् अनुभव ने जो त्रुटियाँ बताईं अथवा विद्वान् हितैषियों और शिक्षण संस्थाओं की ओर से जो सूचनाएँ मिलीं उन्हें दृष्टि में रखकर उस पाठ्यक्रम में समय समय पर परिवर्तन किया गया।

बहुत उहापोह के पश्चात् बताये गए पाठ्यक्रम की पुस्तकें सरलता से उपलब्ध न होने के कारण परीक्षार्थियों को कठिनाई का सामना करना पड़ा। इस कठिनाई की सूचना एवं शिक्षण-संस्थाओं की सम्मति प्राप्त होने पर मैंने साधारण परीक्षा की पाठ्य पुस्तक बनाई जिसमें वे सब बातें संग्रह करके रख दीं, जो साधारण परीक्षा के लिए पाठ्यक्रमानुसार पढ़ाई जाती है। इस पुस्तक के अब तक तीन संस्करण निकल चुके हैं। 'साधारण परीक्षा की पाठ्य-पुस्तक की ही तरह प्रवेशिका आदि परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तक बनाने के लिए भी मुझे शिक्षण संस्थाओं की ओर से प्रेरित किया गया था, परन्तु परीक्षा बोर्ड की पाठ्य पुस्तकों में परिवर्तन होने वाला था इसलिए मैंने अब तक अन्य परीक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें नहीं बनाई थीं।

गत वर्ष परीक्षा बोर्ड की कमेटी ने पाठ्यक्रम के विषय में विचार किया, और उसमें कुछ परिवर्तन भी किया। सुविधा की दृष्टि से परिवर्तित पाठ्य-क्रम की पुस्तकों का प्रकाशन भी परीक्षा बोर्ड की नवीन

नियमावली में पाठ्यक्रम-रूप से दे दिया है, लेकिन भिन्न भिन्न स्थानों से पुस्तकें मंगवाने में छात्रों को व संस्थाओं को कठिनाई भी होती है, और व्यय भी अधिक होता है। तथा कई पुस्तकें ऐसी हैं कि जिनका बहुत थोड़ा भाग पाठ्यक्रम में है और अधिकांश भाग पाठ्य क्रम में नहीं है। विद्यार्थी को ऐसी पुस्तकें खरीदनी तो पड़ती ही हैं जिनका मूल्य आदि व्यय उस पाठ्य भाग की अपेक्षा बहुत अधिक लग पड़ता है। इस बात को दृष्टि में रखकर मैंने साधारण परीक्षा की पाठ्य-पुस्तक की तरह की अन्य परीक्षाओं के लिए भी भिन्न भिन्न पाठ्य पुस्तकें बनाने का विचार किया। इस विचार के अनुसार यह 'प्रवेशिका प्रथम खण्ड' की पाठ्य पुस्तक आपके सन्मुख रखता हूँ। साथ ही आशा रखता हूँ कि निकट भविष्य में इसी तरह अन्य परीक्षाओं की भिन्न भिन्न पाठ्य पुस्तकें बना कर भी आपके सन्मुख रख सकूँगा। इस पाठ्य पुस्तक में वह सब पाठ्य क्रम दे दिया गया है, जो प्रवेशिका प्रथमखण्ड के लिए नियुक्त है। अर्थात् इसमें सामायिकसूत्र सार्थ पूर्ण प्रार्थना पचीस बोल के थोकड़े के ११ बोल, बृहदालोयणा का पाठ्य भाग श्रावक प्रतिक्रमण का पाठ्य भाग, सम्यक्त्व के ६७ बोल के १२ बोल और तीर्थङ्करचरित्र का पाठ्य भाग है। मतलब यह है कि प्रवेशिका प्रथमखण्ड का पूर्ण पाठ्य क्रम इस पुस्तक में है, जो छात्रों के लिए उपयोगी होगा।

ॐ इत्यलम् ॐ

रतलाम
चैत्र पूर्णिमा
१९९५

भवदीय—

धाड़ीचन्द श्रीश्रीमाल

अध्यापकों से—

प्रिय अध्यापकगण !

'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' के संचालकों का उद्देश्य यह है कि आज के छात्र (जो भावी श्रावक हैं) केवल नाम मात्र के श्रावक न हों किंतु सच्चे श्रावक बनें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही 'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' को जन्म दिया गया है। इसके लिये पुस्तकें पढ़ कर परीक्षा देना ही पर्याप्त नहीं है, किंतु यह आवश्यक है कि पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान हृदयगम किया जावे, और जीवन सुसंस्कृत बनाया जावे। धार्मिक पुस्तकें पढ़ने पर भी यदि जीवन धार्मिक संस्कारयुक्त न बना तो पुस्तकों का पढ़ना एक प्रकार से व्यर्थ है। छात्रों का जीवन धार्मिक संस्कारयुक्त तभी बन सकता है, जब आप लोग उन्हें पढ़ी गई बातों का महत्व एवं उनमें रहा हुआ रहस्य समझावें। साथ ही तदनुसार जीवन बनाने के लिये प्रोत्साहित करते रहें। ऐसा करने पर उनका जीवन भी धार्मिक संस्कारयुक्त बनेगा, और वे बुद्धिगम्य प्रश्नों का उत्तर देने में भी समर्थ हो सकेंगे। मैं आशा करता हूँ कि आप इस ओर लक्ष्य देंगे, तथा जो भाग मौखिक रटने का है वह छात्रों से मौखिक याद करावेंगे और समझाने का भाग पूरी तरह समझावेंगे। फुटनोट में दिया गया मेटर समझाने के लिये ही है, अत उसे उपेक्षापूर्वक छोड़ न दें।

भवदीय—

बालचन्द श्रीश्रीमाल

विषय सूची

विषय	पृष्ठांक

द केसरीचन्द कोठारी

॥ ॐ वीतरागाय नमः ॥

सामायिक सूत्र

(अर्थ सहित)

नमस्कार सूत्र

णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आयरियाणं। णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं। ऐसो पंच णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥१॥

शब्दार्थ—

णमो—नमस्कार हो
अरिहंताणं—अरिहंतों को
णमो—नमस्कार हो
सिद्धाणं—सिद्धों को
णमो—नमस्कार हो
आयरियाणं—आचार्यों को
णमो—नमस्कार हो
उवज्झायाणं—उपाध्यायों को
णमो—नमस्कार हो
लोए—लोक में (मनुष्य लोक में)

सव्वसाहूणं—सब साधुओं को
एसो—यह
पंच—पांच परमेष्ठियों को किया हुआ
णमुक्कारो—नमस्कार
सव्व—सब
पाव—पापों का
पणासणो—नाश करने वाला है
च—और
सव्वेसिं—सब
मंगलाणं—मंगलों में
पढमं—पहला (मुख्य)
मंगलं—मंगल
हवइ—है

भावार्थ—श्री अरिहन्त भगवान् को मेरा नमस्कार हो, श्री सिद्ध भगवान् को मेरा नमस्कार हो, श्री आचार्य महाराज को मेरा नमस्कार हो, श्री उपाध्याय महाराज को मेरा नमस्कार हो, लोक में रहे हुए सब साधु महात्मा को मेरा नमस्कार हो। ये पाँच नमस्कार सब पापों का नाश करनेवाले और सब मंगलों में प्रथम मंगलरूप हैं।

२—गुरुवन्दणा—तिक्खुत्तो का पाठ

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं (करेमि) वन्दामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वन्दामि ॥

शब्दार्थ—

तिक्खुत्तो—तीन बार
आयाहिण—दक्षिण तरफ से (जुड़े हुए हाथ उठा कर)
पयाहिण—प्रदक्षिणा
करेमि—करता हूँ
वन्दामि—गुणग्राम (स्तुति) करता हूँ
नमंसामि—नमस्कार करता हूँ
सक्कारेमि—सत्कार देता हूँ
सम्माणेमि—सम्मान देता हूँ
कल्लाण—आप कल्याण रूप हैं
मंगलं—मंगल रूप हैं
देवयं—धर्म देव रूप हैं
चेइयं—ज्ञानवंत हैं, ऐसे आप गुरुदेव की
पज्जुवासामि—सेवा करता हूँ
मत्थएणवन्दामि—मस्तकादिक पांच अङ्ग नमाकर वन्दन करता हूँ।

भावार्थ—हे पूज्य ! मैं तीन बार अपने दोनों हाथ जोड़ कर आपकी प्रदक्षिणा करके स्तुति करता हुआ आपको नमस्कार करता हूँ, सत्कार देता हूँ, सम्मान देता हूँ। आप कल्याणकारी हैं, मंगलस्वरूप हैं, साक्षात धर्मदेव हैं, ज्ञान के भण्डार हैं, इसलिए आपकी पर्युपासना करता हुआ मस्तकादि पाँच अङ्ग झुका कर आपको वन्दन करता हूँ।

३—इरियावहिय सूत्रम्

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इरियावहियं पडिक्कमामि इच्छं । इच्छामि पडिक्कमिउं, इरियाव-

हियाए विराहणाए गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा उत्तिंग पणग दग मट्टी मक्कडा संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया अभिहया, वत्तिया लेसिया, संघाइया संघट्टिया परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाण संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ १ ॥

शब्दार्थ—

इच्छाकारेण—आपकी इच्छा पूर्वक
संदिसह—आज्ञा दीजिये
भगवन्—हे गुरु महाराज!
इरियावहियं—ईर्यापथिकी क्रिया का (मार्ग में चलने में होनेवाली क्रिया को)
पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण (निवर्त्तन करता हूँ।)
इच्छं—प्रमाण है।
इच्छामि—मैं चाहता हूँ।

पडिक्कमिउं—निवृत्त होना
इरियावहियाए—मार्ग में चलने में होनेवाली
विराहणाए—विराधना से
गमणागमणे—जानेआने में
पाणक्कमणे—किसी बेइन्द्रियादिक प्राणी को दबाया हो
बीयक्कमणे—बीज को दबाया हो
हरियक्कमणे—वनस्पति को दबाया हो
ओसा—ओस

उत्तिंग—कीड़ानगरा
पणग पांच रंग की काई (फूलन)
दग—कच्चा पानी
मट्टी—सचित्त मिट्टी
मक्कडासंताणा—मकड़ी के जालों को
संकमणे—कचरे हों, चांपे हों
जे—जो कोई
मे—मैंने
जीवा—जीवों को
विराहिया—पीड़ा दी हो
एगिंदिया—एक इन्द्रियवाले
बेइन्दिया—दो इन्द्रियवाले
तेइन्दिया—तीन इन्द्रियवाले
चउरिन्दिया—चार इन्द्रिय वाले
पंचिंदिया—पांच इन्द्रियवाले
अभिहया—सन्मुख आये हुए जीवों को हणा (मारा) हो
वत्तिया—धूल आदि में ढांका हो
लेसिया—आपस में अथवा जमीन पर मसला हो
संघाइया—इकट्ठा किया हो
संघट्टिया—छुआ हो
परियाविया—परिताप (कष्ट) पहुँचाया हो
किलामिया—मृत्युतुल्य किया हो
उद्दविया—हैरान किया हो (भयभीत किया हो)
ठाणाओ—एक जगह से
ठाणं—दूसरी जगह
संकामिया—रक्खा हो
जीवियाओ—जीवन से
ववरोविया—छुड़ाया हो
तस्स—उनका
मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो
मि—मेरे लिये
दुक्कडं पाप

भावार्थ—भगवन्! यदि आपकी आज्ञा हो तो मार्ग में

चलने की क्रियारूप पाप से छूटने (पीछे हटने) की मेरी इच्छा है। मैं अन्तःकरणपूर्वक गमनागमन की क्रिया का प्रतिक्रमण करता हूँ। चलते फिरते समय मुझसे किसी भी जीव की विराधना हुई हो, जैसे द्वीन्द्रियादिक त्रस जीवों को, धान गुठली आदि बीज को, हरी वनस्पति को, ओस के पानी को, कीड़ियों के नगरा को, पाँच रंग में से किसी भी रंग की फूलन को, कच्चे पानी को, सचित मिट्टी को, और मकड़ी के जालों को पाँव से दबाया हो, कुचला हो, अथवा एकेन्द्रिय जीवों को, द्वीन्द्रिय जीवों को, त्रीन्द्रिय जीवों को, चौरिन्द्रिय जीवों को तथा पाँच इन्द्रिय वाले जीवों को सामने आते हुए हना हो, धूलादि से ढाका हो, मसला हो, उन्हें इकट्ठा किया हो, परिताप दिया हो, मृत्युतुल्य कष्ट दिया हो, डराया हो, एक जगह से दूसरी जगह रक्खा हो, जीव रहित किया हो, तो मेरे द्वारा हुए ऐसे दुष्कृत निष्फल हों। ॐ

ॐ इस पाठ से मिलने वाली शिक्षा, आत्मा का समाधान के लिए —

(१) इस पाठ में सबसे प्रथम विनय की शिक्षा है। यह बताया है कि पाप की आलोचना करने के लिए भी गुरुजन की स्वीकृति लेनी चाहिए। जब धर्म कार्य के लिए भी गुरुजन की स्वीकृति आवश्यक है तब दूसरे किसी कार्य के विषय में गुरुजन की उपेक्षा कैसी

४–तस्स उत्तरीमन्त्रम्

तस्स उत्तरीकरणेण, पायच्छित्तकरणेण, विसोहीकरणेण, विसल्लीकरणेण, पावाण कम्माण निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्ग, अन्नत्थ ऊससिएण, नीससिएण, खासिएण, छीएण, जभाइएणं, उड्डुएण, वायनिसग्गेण भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अगमचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसचालेहिं, एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो, जाव अरिहताण भगवताण णमुक्कारेण न पारेमि ताव काय ठाणेण मोणेण झाणेण अप्पाण वोसिरामि॥ १ ॥

की जा सकती है ? इसलिए स्वच्छन्दता त्याग कर विनय को अपनाना चाहिए ।

(२) 'पाँव के नाचे दबने से जीव की विराधना हुई हो' इस कथन में नीचे देखते हुए सावधानीपूर्वक चलने की शिक्षा है ।

(३) जीव को प्राण रहित करना ही हिंसा नहीं है, किन्तु शरीर के अथवा वचनादि से कष्ट पहुँचाना भी हिंसा है ।

शब्दार्थ—

तस्स—उस आत्मा को
उत्तरीकरणेण—श्रेष्ठ उत्कृष्ट बनाने के लिये
पायच्छित्तकरणेण—प्राय श्चित्त करने के लिये
विसोहीकरणेण—विशेष शुद्धि करने के लिए
विसल्लीकरणेण—शल्य का त्याग करने के लिये
पावाण—पाप रूप अशुभ
कम्माण—कर्मो का
निग्घायणट्ठाए—नाश करने के लिए
ठामि—करता हूँ
काउस्सग्ग—कायोत्सर्ग—शरीर के हलन चलन का त्याग
अन्नत्थ—नीचे लिखे हुए आगारों के सिवाय
ऊससिएण—उच्छ्वास (ऊँचा श्वास) लेने से
नीससिएण—नि श्वास (नीचा श्वास) छोड़ने से
खासिएण—खाँसी आने से
छीएण—छींक आने से
जभाइएण—उबासी आने से
उड्डुएण—डकार आने से
वायनिसग्गेण—अध वायु निकलने से
भमलीए—चक्कर (फेर) आने से
पित्तमुच्छाए—पित्त विकार की मूर्छा से
सुहुमेहि—सूक्ष्म (थोड़ा)
अगसचालेहि—अङ्ग सचार (हिलने) से
सुहुमेहि—थोड़ा सा
खेलसचालेहि—कफ सचार से
सुहुमेहि—थोड़ा सा
दिट्ठिसचालेहि—दृष्टि चलाने से

एवमाइएहिं—इत्यादि	न पारेमि—न पारूँ
आगरेहिं—आगारों से	ताव—तब तक
अभग्गो—भाग नहीं (अभग)	कायं—काया (शरीर)को
अविराहिओ—अखण्डित	ठाणेण—स्थिर रख कर
हुज्ज—हो	मोणेण—मौन रख कर
मे—मेरा	झाणेण—ध्यान धरकर एकाग्रचित्त से
काउस्सग्गो—कायोत्सर्ग	अप्पाणं—आत्मा का (कषायादि से)
जाव—जब तक	वोसिरामि—अलग (त्याग) करता हूँ
अरिहंताणं—अरिहंत	
भगवंताणं—भगवान को	
णमुक्कारेणं—नमस्कार करके	

भावार्थ—प्रभो! उस विराधना रूप पापक्रिया में आत्मा को पवित्र करने के लिए, प्रायश्चित द्वारा विशेष शुद्धि करने के लिए, शल्य को त्यागने के लिए और पापकर्म नष्ट करने के लिए मैं कायोत्सर्ग (काया को हलनचलन रहित समाधि में स्थापित) करता हूँ। इसमें निम्न प्राकृतिक क्रियाएँ जो मेरे रोकन से नहीं रुकतीं, उनका आगार (छूट) है—

ऊँचा श्वास लेने से, नीचा श्वास लेने से, खाँसी छींक उबासी और डकार आने से, अधः वायु निकलने से, चक्कर आने

से, पित्त विकार के कारण मूर्छा आने से, सूक्ष्मतया अङ्ग हिलने से, कफ के प्रकोप से, दृष्टि की चपलता के कारण नेत्र फरकने से और इसी तरह की अन्य प्राकृतिक क्रियाओं के कारण शरीर का हलन चलन होने पर भी मेरा कायोत्सर्ग अभङ्ग होवे।

जहाँ तक मैं 'नमो अरिहन्ताणं' उच्चार कर कायोत्सर्ग समाप्त न करूँ (न पालूँ) वहाँ तक अपने शरीर को स्थिर रखकर, वचन से मौन रह कर और मन को एकाग्र करके अपने आत्मा को प्रवृत्तियों से हटाता हूँ। ४

* इस पाठ से मिलने वाली शिक्षा —

(१) पाप का प्रायश्चित्त करके मन उज्ज्वल किया जा सकता है।

(२) कायोत्सर्ग योगसाधन की क्रिया है। कायोत्सर्ग को आगे बढ़ाने पर योग सिद्धि होती है।

(३) कायोत्सर्ग में शारीरिक हलन चलन रुकने से शरीर को जो कष्ट होता है, उस पर से पराई पीड़ा जानी जाती है और दूसरे को पीड़ा देने से बचने की शिक्षा मिलती है।

नोट — सामायिक करते समय कायोत्सर्ग में इरिया वहियं पाठ का चिन्तवन करते हुए यह सोचना चाहिए कि पाठ में बताये गये पापों में से मेरे द्वारा कौन-सा पाप हुआ है, और ऐसा सोच कर उस पाप के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए।

४—लोगम्स सूत्रम्

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे। अरिहन्ते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥१॥ उसभ मजिअं च वंदे, सम्भव मभिणंदणं च सुमइं च। पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥ सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च। विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥ कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च। वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥ एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा। चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥ कित्तिय वंदियमहिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा। आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥६॥ चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा। सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

शब्दार्थ—

लोगस्स—लोक में
उज्जोअगरे—उद्योत (प्रकाश) करने वाले
धम्मतित्थयरे—धर्म रूप तीर्थ को स्थापन करने वाले
जिणे—राग द्वेष को जीतने वाले

अरिहंते—इस रूप प्रभु का नाम करने वाले तीर्थंकरों का
कित्तइस्सं—मैं स्तुति करता हूँ
चउवीसंपि—चौवीसों
केवली—केवल ज्ञानी
उसभ—श्री ऋषभदेव स्वामी को
अजित—श्री अजितनाथ को
च—और
वंदे—वन्दना करता हूँ
संभव—श्री संभवनाथ स्वामी को
अभिणंदणं च—और श्री अभिनन्दन स्वामी को
सुमइं—श्री सुमतिनाथ प्रभु को
च—और
पउमप्पहं—श्री पद्मप्रभ स्वामी को
सुपासं—श्री सुपार्श्वनाथ प्रभु को
जिणं च चंदप्पहं—और जिन देव चन्द्रप्रभु को
वंदे—वन्दन करता हूँ
सुविहिं—सुविधिनाथ को
च—और
पुप्फदंतं—सुविधिनाथजी का दूसरा नाम पुष्पदन्त भगवान को
सीअल—श्री शीतलनाथ को
सिज्जंस—श्री श्रेयांसनाथ को
वासुपुज्जं—श्री वासुपूज्य को
च—और
विमलं—श्री विमलनाथ को
अणंतं च जिणं—श्री अनन्तनाथ जिन को और
धम्मं—धर्मनाथ को
संतिं—श्री शान्तिनाथ जिन को
च—और
वंदामि—वन्दन करता हूँ
कुंथुं—श्री कुंथुनाथ को
अरं—श्री अरनाथ को
च—और

मल्लि—श्री मल्लिनाथ को
वंदे—वंदन करता हूँ
मुणिसुव्वयं—श्री मुनिसुव्रत को
नमिजिणं—श्री नमिनाथ जिनेश्वर को
च—और
वंदामि—मैं वंदन करता हूँ
रिट्ठनेमि—श्री अरिष्टनेमि (श्री नेमनाथ) को
पासं—श्री पार्श्वनाथ को
तह—तथा
वद्धमाणं—श्री वर्द्धमान (महावीर स्वामी) को
च—और
एवं—इस प्रकार
मए—मैंने
अभिथुआ—स्तुति की
विहुयरयमला—पाप-रज के मल से विहीन,
पहीण जरमरणा—बुढ़ापा तथा मरण से मुक्त
चउविसंपि—चौवीसों
जिणवरा—जिनेश्वरदेव
तित्थयरा—तीर्थङ्करदेव
मे—मेरे पर
पसीयंतु—प्रसन्न हों
कित्तिय—वचन से कीर्तन योग्य
वंदिय—काया से वंदन योग्य
महिया—मन से पूजन योग्य
जे—जो
ए—ये
लोगस्स—लोक में
उत्तमा—उत्तम(प्रधान)
सिद्धा—सिद्ध भगवन्त
आरुग्गबोहिलाभं—रोग रहित बोध सम्यक्त्व का लाभरूप
समाहिवरमुत्तमं—उत्तम समाधि को

सामायिक ग्रहण करने का पाठ

करेमि भंते ! सामाइय, सावज्ज जोग पचक्खामि- जावनियम पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

शब्दार्थ—

करेमि—मैं ग्रहण करता हूँ
भंते—हे भगवन् !
सामाइय—सामायिक व्रत को
सावज्ज —(सावद्य) पापसहित
जोग—व्यापार का
पच्चक्खामि—प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ
जाव—जब तक
नियम—इस नियम का
पज्जुवासामि—सेवन करता हूँ तब तक
दुविह—दो प्रकार के करण से
तिविहेण—तीन प्रकार के योग से
न करेमि—सावद्य योग को न करूँगा

---

(३) पौद्गलिक सुखों की लालसा मिटाने का उपाय पर आत्मा की प्रार्थना करता है।

नोट —इस प्रकार आत्मा को पवित्र बना कर और विषय कषाय की ज्वाला शान्त करके सामायिक स्वीकार करनी चाहिये।

न कारवेमि—न दूसरे से कराऊंगा
मणसा वयसा कायसा—मन वचन और काया से
तस्स—उससे प्रथम के पाप से
भंते—हे भगवन !
पडिक्कमामि—मैं निवृत्त होता हूँ
निंदामि—उस पापकी आत्म साक्षीसे निन्दा करता हूँ
गरिहामि—विशेष गर्हा गुरु साक्षी से निन्दा करता हूँ
अप्पाणं—आत्माको (उस पाप व्यापार से)
वोसिरामि—हटाता हूँ, अलग करता हूँ

भावार्थ —हे प्रभो ! मैं सब सावद्य योगों का प्रत्याख्यान करके सामायिक व्रत अङ्गीकार करता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि • मुहूर्त तक न तो मैं स्वयं मन वचनकाय से पाप म प्रवृत्त होऊँगा, न अन्य से मन वचनकाय द्वारा पाप कराऊँगा। हे प्रभो ! अबमैं सब पापमयी प्रवृत्ति से निवृत्त होता हूँ, आत्म साक्षी से ऐसी प्रवृत्ति की निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से घृणा करता हूँ और ऐसी प्रवृत्ति से अपने आत्मा को हटाता हूँ।

७–नमुत्थुण सूत्र

नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं पुरिसवर-पुंडरीआणं पुरिसवर गंधहत्थीणं,

लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसियाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर—चाउरन्त—चक्कवट्टीणं दीवोत्ताणं सरणगइपइट्ठा, अप्पडिहय वरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं, सिव मयल मरुअ-मणंत मक्खय मव्वाबाह-मपुणरावित्ति सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जियभयाणं। *

शब्दार्थ—

नमुत्थुणं—नमस्कार हो
अरिहंताणं भगवंताणं—
अरिहंत भगवान को
आइगराणं—धर्म की शुरुआत करने वाले को
तित्थयराणं—धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले को

सयंसंबुद्धाणं—अपने आप ही बोध पाये हुए को
पुरिसुत्तमाणं—पुरुषों में श्रेष्ठ को
पुरिससीहाणं—पुरुषों में सिंह के समान को
पुरिसवरपुंडरीआणं—पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान को

* नोट—दूसरी बार नमुत्थुणं बोलने के समय 'ठाणं संपत्ताणं' के बदले 'ठाणं संपाविउकामाणं' बोलना चाहिये।

पुरिसवरगन्धहत्थीणं—पुरुषों में प्रधान गन्ध हस्ति के समान को

लोगुत्तमाणं—लोक में उत्तम को

लोग नाहाणं—लोक के नाथ को

लोगहियाणं—लोक का हित करने वाले को

लोगपईवाणं—लोक के लिए दीपक के समान को

लोगपज्जोअगराणं—लोक में उद्योत करने वाले को

अभयदयाणं—अभय देने वाले को

चक्खुदयाणं—ज्ञानरूपी नेत्र देने वाले

मग्गदयाणं—धर्ममार्ग के दाता

सरणदयाणं—शरण देने वाले

जीवदयाणं—संयम या ज्ञान रूप जीवन देने वाले को

बोहिदयाणं—बोधि अर्थात् सम्यक्त्व देने वाले को

धम्मदयाणं—धर्म के दाता

धम्मनायगाणं—धर्म के नायक को

धम्मसारहीणं—धर्म के सारथि

धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं—धर्म में प्रधान तथा चार गति का अन्त करने वाले धर्म चक्रवर्ती को

दीवोताणं—संसार समुद्र में द्वीप समान

सरणगइपइट्ठा—शरण गये हुए को आधार भूत

अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं अप्रतिहत तथा श्रेष्ठ ऐसे ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले

वियट्टछउमाणं—छद्म अर्थात् घातिकर्म रहित को

जिणाणं जावयाणं—स्वयं (राग द्वेष को) जीतने

वाले, औरों को जिताने वाले को

तिन्नाण तारयाण—स्वय (ससार से) तरे, दूसरों को तारने वाले को

बुद्धाण बोहयाण—स्वय बोध पाये हुए दूसरों को बोध प्राप्त कराने वाले को

मुत्ताण मोअगाण—स्वय (कर्म बन्धन से) छूटे हुए दूसरों को छुडाने वाले को

,सव्वन्नूण—सर्वज्ञ

सव्वदरिसीण—सर्वदर्शी

सिव—निरुपद्रव

अयल—स्थिर

अरुअ—रोग रहित

अणत—अन्त रहित

अक्खय—क्षय रहित

अव्वाबाह—बाधा (पीड़ा) रहित

अपुणरावित्ति—पुनरागमन (बार बार आना) रहित

सिद्धगइनामधेय—सिद्ध गति नाम के

ठाण—स्थान को

सपत्ताण—प्राप्त हुए जिनको

नमो—नमस्कार हो

जिणाण—जिनेश्वर सिद्ध भगवान् को

जिअभयाण—भय को जीतने वाले को

ठाण सपाविउ कामाण—सिद्धगति के स्थान को पाने की इच्छा वाले अरिहत भगवन को

भावार्थ —उन अरिहन्त भगवन्त को नमस्कार है, जो-धर्म की आदि करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयं प्रतिबोध पाने वाले, पुरुषो म श्रेष्ठ, सिंह के समान पराक्रमी,

पुण्डरीक (कमल) के समान निर्लेप, गन्ध हस्ती के समान यशस्वी, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितैषी, दीपक के समान, मार्ग दर्शक, लोक में ज्ञान रूपी महान् उद्योत करने वाले, अभय देने वाले, ज्ञान चक्षु देने वाले, धर्म-मार्ग के दाता, शरणदाता, संयम जीवन के दाता, बोध बीज सम्यक्त्व के दाता, श्रुत-चारित्र रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी, चतुर्गति रूप संसार का अन्त करनेवाले चक्रवर्त्ती, संसार समुद्र में द्वीप के समान, शरणागत के आधार, अप्रतिहत अबाधित सर्व व्यापी तथा श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक, घाति कर्म नष्ट करके छद्मस्थता को दूर करनेवाले, रागद्वेष को जीतने एवं दूसरे को भी जितानेवाले, स्वयं संसार समुद्र तरकर दूसरे को तारनेवाले, स्वयं प्रतिबोध पाकर दूसरे को प्रतिबोध देनेवाले, कर्मबन्धन से स्वयं मुक्त होकर दूसरों को मुक्त करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, उपद्रव रहित, स्थिर, रोग रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, जहाँ पहुँचने पर फिर नहीं आना पड़ता ऐसे सिद्ध-गति रूप स्थल को प्राप्त कर लेने वाले, भय रहित, और जिनेश्वर हैं। ❀

❀ यह नमोत्थुणं का पाठ बैठे हुए और दाहिना घुटना पृथ्वी पर टिकाकर तथा बायाँ घुटना खड़ा करके दोनों हाथ जोड़े हुए रखकर एवं जुड़े हुए हाथों की ओर कुछ मस्तक झुकाकर बोलना चाहिए। इस पाठ

८—सामायिक पारने की पाटी

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं, मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणयाए, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणयाए, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं । सामाइयं सम्मं काएणं, न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न कीट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥

को नमस्कार भी करता है। इन्द्र महाराज यह पाठ बोल कर ही भगवान को वन्दन किया करते हैं।

इस पाठ से प्राप्त शिक्षा —

(१) परमात्मा की वीतरागता पर ध्यान देने से अहंकार छूटता है, और भगवान के गुणों का अनुमोदन होता है।

(२) जगत का हित करने से ही परमात्मपद की प्राप्ति होती है, इसलिए अपनी भावना और प्रवृत्ति भी जगत का हित करने की होनी चाहिए।

शब्दार्थ--

एयस्स--ऐसा
नवस्स—नववाँ
सामाइयवयस्स---सामायिक व्रत का
पंच--पांच
अइयारा---अतिचार
जाणियव्वा---जानना
न--नहीं
समायरियव्वा---आदरना
तंजहा---(तद्यथा) वह इसतरह
आलोउं---आलोचना करता हूँ
मणदुप्पणिहाणे--मन खोटे मार्ग में प्रवृत्त हुआ हो
वयदुप्पणिहाणे---वचन खोटे मार्ग में प्रवृत्त हुआ हो
कायदुप्पणिहाणे---काया खोटे मार्ग में प्रवृत्त हुई हो
सामाइयस्स सइ अकरणआए—सामायिक लेकर अधूरा पारा हो या सामायिक की स्मृति (खयाल) न रक्खी हो
सामाइयस्स अणवट्ठियस्स-करणआए-- सामायिक अन्य वस्थितपन से याने चंचलपन से किया हो
तस्स---उसका
मिच्छा---मिथ्या (निष्फल) हो
मि--मेरा
दुक्कडं---पाप
सामाइयं सम्मंकाएणं---सामायिक को सम्यक् प्रकार शरीर से
न फासिअं---स्पर्शा नहीं
न पालिअं--पाला नहीं
न तीरिअं--समाप्त किया नहीं
न कीट्टिअं--कीर्तन किया नहीं
न सोहिअं--शुद्ध किया नहीं
न आराहिअं-अराधना की नहीं
आणाए---वीतराग की आज्ञा-नुसार

अणुपालिअ--पालन	मिच्छा--मिथ्या (निष्फल)
न भवइ--न हुआ हो	मि--मेरे लिये
तस्स--उसका	दुक्कड--पाप

भावार्थ--श्रावक के बारह व्रतों में से नवमें सामायिक व्रत के पाच अतिचार हैं वे जानने योग्य हैं, परन्तु ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। इन अतिचारों की आलोचना करता हूँ जैसे कि--मन में बुरा चिन्तन किया हो अर्थात् मन के दश दोष लगाये हों, दूसरा वचन का दुरुपयोग किया हो अर्थात् वचन के दश दोष लगाये हों, तीसरा काया (शरीर) खोटे मार्ग में प्रवृत्त हुई हो अर्थात् काया के बारह दोष लगाये हों, सामायिक लेकर अधूरी पारी हो या शक्ति होने पर सामायिक न की हो, सामायिक अनवस्थितपन से याने शास्त्र की मर्यादा रहित की हो, इन पाचों अतिचारों का पाप मेरे लिए मिथ्या हो। सामायिक काया से सम्यक् प्रकार किया नहीं, पाला नहीं, समाप्त नहीं किया, कीर्तन नहीं किया, शुद्ध नहीं किया, आराधन नहीं किया और वीतराग भगवान् की आज्ञानुसार पालन नहीं हुआ हो तो उसका पाप मेरे लिए मिथ्या हो।

सामायिक में दस मन के, दस वचन के, बारह काया के ये कुल बत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

सामायिक में [१]स्त्री कथा, भत्त कथा, देश कथा, राज कथा इन चार कथाओं में से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

सामायिक में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा इन चार संज्ञाओं में से कोई संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अणाचार, जानते अजानते मन वचन काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

सामायिक व्रत विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

सामायिक का पाठ बोलने में काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ न्युनाधिक विपरीत पढने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

---

१ स्त्रियों को '[illegible] कथा' बोलना चाहिए।

सामायिक के बत्तीस दोष

(यथानुसार यहाँ लिखते हैं)

मन के दस दोष

**अविवेक जसो कित्ती, लाभत्थी गव्वभय नियाणत्थी ।
संसयरोसअविणउ, अबहुमाण ए दोसा भणियव्वा ॥**

१ विवेक बिना सामायिक करे तो अविवेक दोष ।

२ यश कीर्ति के लिए सामायिक करे तो यशोवाञ्छा दोष ।

३ धनादिक के लाभ की इच्छा से करे तो लाभवाञ्छा दोष ।

४ घमण्ड (अहंकार) सहित करे तो गर्व दोष ।

५ राज्यादिक के अपराध के भय से करे तो भय दोष ।

६ सामायिक में नियाणा करे तो निदान दोष ।

७ फल के प्रति सन्देह रखकर सामायिक करे तो संशय दोष ।

८ सामायिक में क्रोध, मान, माया, लोभ करे तो रोष दोष ।

९ विनयपूर्वक सामायिक न करे, तथा सामायिक में देव गुरु, धर्म की अविनय असातना करे तो अविनय दोष ।

१० बहुमान भक्तिभावपूर्वक सामायिक न करके बेगारी की तरह सामायिक करे तो अबहुमान दोष ।

वचन के दस दोष

**गाथा--कुवयणसहसाकारे, सछंदसंखेव कलहं च।
विगहा वि हासोऽसुद्धं, निरवेक्खो मुणमुणा-
दोसा दस ॥**

१ कुत्सित वचन बोले तो कुवचन दोष ।

२ बिना विचारे बोले तो सहसाकार दोष ।

३ सामायिक में गीत, ख्यालादि राग उत्पन्न करने वाले संसार सम्बन्धी गाने गावे तो स्वच्छंद दोष ।

४ सामायिक के पाठ और वाक्य को टुंका करके बोले तो संक्षेप दोष ।

५ सामायिक में क्लेश का वचन बोले तो कलह दोष ।

६ राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भोजनकथा, इन चार विकथाओं में से कोई विकथा करे तो विकथा दोष ।

७ सामायिक में हँसी मसखरी ठट्ठाठोल करे तो हास्य दोष ।

८ सामायिक में गडबड करके उतावले २ बोले, बिना उपयोग और अशुद्ध पद बोले तो अशुद्ध दोष । *

---

* नोट —कोई कोई ऐसा भी बोलते हैं कि सामायिक में आवता को सत्कार सम्मान देवे (आवो पधारो कहे तथा आवता का नाम आण का

९ सामायिक उपयोग बिना बोले सो निरपक्ष दोष ।

१० स्पष्ट उच्चारण न करके जो गुण २ बोले सो मुम्मण दोष

काय के १२ दोष

'कुआसण 'चलासण 'चलदिट्ठी
'सावज्जकिरिया 'लंवणा 'कुंचण पसारणं ।
'आलस 'मोडणमल 'विमासणं,
''निद्रा 'वेयावचत्ति बारस कायदोसा ॥२॥

१ सामायिक में अयोग्य आसन से बैठे, जैसे कि टांगणी मार के बैठे, पांव पर पांव रखकर बैठे, पग पसार कर बैठे, तथा आसन पलाठी मार कर बैठे, इत्यादि अभिमान के आसन से बैठे तो कुआसण दोष ।

२ सामायिक में स्थिर आसन न रखे चपलाई करे तो चला-सन दोष ।

३ सामायिक में दृष्टि को स्थिर न करे, इधर उधर दृष्टि फेरे तो चलदृष्टि दोष ।

४ सामायिक में शरीर से सावद्य क्रिया करे, घर की रखवाली करे, शरीर से इशारा करे तो सावद्यक्रिया दोष ।

पच्चीस बोल का थोकड़ा

पहले बोल गति ४—नरक गति तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति।

विवेचन —नाम कर्म का गति नाम प्रकृति के उदय से आत्मा की प्राप्त होने वाली पर्याय को गति कहते हैं। अथवा जिस स्थान-विशेष में उदय। बना कर गमन किया जावे, उस को गति कहते हैं।

दूसरे बोल जाति ५—एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

विवेचन —अनेक में एकता बताने वाले धर्म को जाति कहते हैं, जैसे अनेक मनुष्यों में ओसवाल, पोरवाल आदि जातिसूचक शब्द एकता बताते हैं, और काली पीली आदि अनेक रंग की गायों में गो पन एकता बताता है।

तीसरे बोल काय ६—पृथ्वी काय, अपकाय, तेजस्काय, वायु-
काय, वनस्पति काय और त्रसकाय।

विवेचन.—त्रस या स्थावर नाम कर्म प्रकृति से जीव जिस
पिण्ड (शरीर) में उत्पन्न होता है, उसे काय
कहते हैं।

(१) पृथ्वी काय—मिट्टी हींगलू, हड़ताल, भोडल,
भाठा, शिला, नमक, कचा सोना, रूपा, तांबा, लोहा, शीशा, हीरा, पन्ना
आदि सात लाख योनि हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट
शुद्ध पृथ्वीकाय का १२ हजार वर्ष का और खर पृथ्वीकाय का
२२ हजार वर्ष का है। एक कांकरे में असंख्याता जीव श्री भग-
वन्त ने फरमाया है। पृथ्वीकाय का वर्ण पीला है। स्वभाव
कठोर है। संठाण मसूर की दाल के आकार है। पृथ्वीकाय की
१२ लाख कुल कोड़ी हैं। एक पर्याप्ता की नेसराय असंख्याता
अपर्याप्ता है।

(२) अपकाय—बरसात का पानी, ओस का पानी, घड़ा
का पानी, समुद्र का पानी, कुँवर का पानी, कुँआ बावड़ी का पानी,
आदि सात लाख योनि हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट
सात हजार वर्ष का है। एक पानी की बूँद में असंख्याता जीव

श्री भगवन्त ने फरमाया है। एक पर्याप्ता की नेसराय असख्याता अपर्याप्ता हैं। अप्काय का वर्ण लाल है। स्वभाव ढीला है। सठाण पानी के परपोट माफिक हैं। अप्काय का ७ लाख कुल कोडी हैं।

(३) तउकाय—(तेजस्काय) अग्नि झाल की अग्नि, बिजली की अग्नि, बाँस की अग्नि, उल्कापात आदि सात लाख योनि हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त का और उत्कृष्ट तीन रात दिन का है। एक अग्नि का चिनगारी म असख्याता जीव भगवन्त ने फरमाया है। एक पर्याप्ता का ने सराय असख्याता अपर्याप्ता हैं, तेउकाय का वर्ण सफद है। स्वभाव उष्ण (गर्म) है। सठाण सुइ के भारे के माफिक है। सुइ की तरह अग्नि का झाल नीचे से मोटी ऊपर से पतली। तेउकाय की तीन लाख कुल कोडी हैं।

(४) वाउकाय—उक्कलिया वाय, मडलिया वाय, घण-वाय, तणु वाय, पूर्व वाय, पश्चिम वाय आदि सात लाख योनि हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त का और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष का है। एक फूंक में असख्याता जीव श्री भगवान् ने फरमाया है। एक पर्याप्ता की नेसराय असख्याता अपर्याप्ता हैं। वाउकाय का वर्ण हरा है स्वभाव धाजणा है, सठाण ध्वजा (पताका) के आकार है। वायकाय की ७ लाख कुल कोडी हैं।

(५) वनस्पतिकाय—बादर के २ भेद प्रत्येक और साधारण। वनस्पतिकाय का वर्ण काला (नीला) है। स्वभाव मठाग नाना प्रकार का है। २८ लाख कुल कोड़ी हैं। एक शरीर में एक जीव होवे उसको प्रत्येक कहते हैं। जैसे आम अगूर, केला, बड़ पावल आदि १० लाख जाति हैं। कन्द मूल की जाति को साधारण वनस्पति कहिये। जैसे—लसन, सकरकन्द, अदरक, आलू, रतालू, मूला, गाजी हल्दा, गाजर, लहसुण, प्याज आदि १४ लाख योनि हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट दस हजार वर्ष का है।

साधारण—एक सुई के अग्रभाग में असंख्याता श्रेणि हैं। एक एक श्रेणि में असंख्याता प्रतर हैं। एक-एक प्रतर में असंख्याता गोला हैं। एक-एक गोला में असंख्याता शरीर हैं। एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। निगोद का आयुष्य जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का वहीं पर मरे और उपजे। इस तरह उत्कृष्ट अनन्त काल तक रहता है।

(६) त्रसकाय—जो जीव हिले चले, छाया से धूप में आवे और धूप से छाया में जावे उसको त्रसकाय कहते हैं। इसके चार भेद—बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय। (१) बेइन्द्रिय काया और मुख ये दो इन्द्रियाँ जिसके हों, उसका बेइन्द्रिय कहते हैं।

जैसे –शङ्ख, कौड़ी, सीप, लट, कौडी मठमिया, कृमि (नूरणिया) वालो आदि दो लाख योनि हैं। बेइन्द्रिय की ७ लाख कुल कोडी हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट बारह वर्ष का है। (२) तेइन्द्रिय—काय, मुख, और नाक, ये तीन इन्द्रिया जिसके हों, उसको तेइन्द्रिय कहते हैं। जैसे—जूँ, लाख, चाचड, माकड, कीड़ी, कुथुवा, मकोडा कानखजूरा आदि दो लाख योनि हैं। तेइन्द्रिय की ८ लाख कुल कोडी हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट गुणपचास दिन का है। (३) चतुरिन्द्रिय—काय, मुख, नाक और आँख ये चार इन्द्रिय जिसके होवें उसको चउरिन्द्रिय कहिये। जैसे—माखो, डास, मच्छर, भमरा, टोडी, पतङ्गा, कसारी बिच्छू आदि २ लाख योनि हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट छमास का। चउरिन्द्रिय की ९ लाख कुल कोडी हैं। (४) पचन्द्रिय-काया, मुख, नाक, आख और कान, ये पाच इन्द्रिया जिसके होवें उसको पंचेन्द्रिय कहिये। जैसे—गाय, भैंस, बैल, हाथी, घोडा, मनुष्य आदि २६ लाख (४ लाख देवता, ४ लाख नारकी, ४ लाख तिर्यञ्च, १४ लाख मनुष्य) योनि हैं। आयुष्य नारक और देव का जघन्य दस हजार वर्ष का उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का और तिर्यञ्च मनुष्य का जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम का। पञ्चेन्द्रिय की ११६५००००) एक क्रोड साढा सोलह लाख कुल कोडी हैं। कुल कोड़ी का खुलासा इस प्रकार है—नारकी की २५ लाख कुल कोडी हैं।

देवता का २६ लाख, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जलचर की १२॥ लाख स्थलचर की १० लाख, खेचर की १२ लाख, उर परिसर्प की १० लाख, भुजपरिसर्प का ९ लाख, मनुष्य का १२ लाख कुल कोड़ी हैं।

कुल कोडी किसको कहते हैं? कुलों के प्रकार (भेद) को कुल कोडी कहते हैं। जैसे-अमुक प्रकार के रूप रसादि वाले परिमाणुओं से बने हुए हों वह कुल का एक प्रकार, उनसे भिन्न प्रकार के रूप रसादि वाले परमाणुओं से बने हुए हों वह दूसरा प्रकार। इस तरह अमुक प्रकार के परमाणुओं के विकारजन्य ही कुलों के भेद होते हैं। अर्थात् जैसे एक छाणे (पोटे) में बिच्छू के कुल बहुत उपजते हैं वैसे ही एकेन्द्रिय में भी बहुत कुल उपजते हैं उसको कुल कोडी कहते हैं।

एक मुहूर्त में एक जीव उत्कृष्ट कितने भव करता है? पृथ्वी काय, अपकाय, तेउकाय, वाउकाय एक मुहूर्त में उत्कृष्ट १२८२४ भव करे। बादर वनस्पतिकाय एक मुहूर्त में उत्कृष्ट ३२००० भव करे। एकेन्द्रिय सूक्ष्म वनस्पति एक मुहूर्त में उत्कृष्ट ६५५३६ भव करे। बेइन्द्रिय एक मुहूर्त में उत्कृष्ट ८० भव करे। तेइन्द्रिय एक मुहूर्त में उत्कृष्ट ६० भव करे। चउरिन्द्रिय एक मुहूर्त में उत्कृष्ट ४० भव करे। असन्नी पंचेन्द्रिय एक मुहूर्त में उत्कृष्ट २४ भव करे। सन्नी पंचेन्द्रिय एक मुहूर्त में १ भव करे।

छःकाय का अल्प बहुत्व

सबसे कम त्रस काय, उससे तेउकाय असंख्यात गुणे, उससे पृथ्वी काय विशेषाधिक (कुछ अधिक) उससे अपकाय विशेषाधिक उससे वायुकाय विशेषाधिक उससे वनस्पतिकाय अनन्त गुणे हैं।

छः काय के विशेष नाम

(१) इन्दीथावरकाय (२) बम्भीथावरकाय (३) सिप्पी थावरकाय (४) सुमतिथावरकाय (५) पयावच्चथावरकाय और (६) जंगमकाय।

चौथे बोल इन्द्रिय ५—श्रोत्रेन्द्रिय (कान) चक्षुरेन्द्रिय (आँख) घ्राणेन्द्रिय (नाक) रसेन्द्रिय (जीभ) स्पर्शेन्द्रिय (शरीर)।

विवेचन—जीव के उन चिह्न विशेष को (जिनसे कि जीव कार्य लेता है) इन्द्रिय कहते हैं। जीव कान से सुनता, आँख से देखता, नाक से गन्ध पहचानता, जीभ से स्वाद लेता और शरीर से पदार्थ को छू कर ठंडा गरम आदि पहचानता

है, इसलिये ये पाँचों कार्य करनेवाले चिह्न 'इन्द्रियाँ' कहलाते हैं ।

पाँचवें बोल पर्याप्ति ६—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मन पर्याप्ति ।

विवेचन—जीव जब एक भव से दूसरे भव में उत्पन्न होता है तब पुद्गलों का आहार शरीर इन्द्रियाँ श्वासोच्छ्वास भाषा और मन के रूप में परिणमन करके जीवन निभाने की सामग्री तय्यार करता है । उस सामग्री तय्यार करने की पर्याप्ति कहते हैं ।

छठे बोल प्राण १०—श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण, चक्षुरेन्द्रिय बल प्राण, घ्राणेन्द्रिय बल प्राण, रसेन्द्रिय बल प्राण, स्पर्शेन्द्रिय बल प्राण, मन बल प्राण, वचन बल प्राण, काय बल प्राण, श्वासोच्छ्वास बल प्राण और आयुष्य बल प्राण ।

विवेचन—जिनके सयोग से आत्मा शरीर म सुख पूर्वक रहे और जिनके वियोग से आत्मा को शरीर त्यागना पड़े, उन्हें प्राण कहते हैं ।

सातवें बोल शरीर ५—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कारमण ।

विवेचन—जो शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त होकर प्रति क्षण जीर्ण शीर्ण होता है और असुक्त(ससारी) आत्मा जिसमें रहता है, उसे शरीर कहते हैं । शरीर पांच तरह के होते हैं जिनके भेद इस प्रकार हैं —

जो हाड़ रक्त मांस आदि सप्त धातुओं से बना होता है, उसे औदारिक शरीर कहते हैं ।

जो शरीर सप्तधातु रहित हो और केवल शुभ अशुभ पुद्गलों का पिण्ड हो तथा आत्मा द्वारा त्यागे जाने के पश्चात् कपूर की तरह बिखर जावे, उसे वैक्रिय कहते हैं ।

लब्धिधारी मुनि अपने शरीर में से पुद्गलों को निकाल कर उन पुद्गलों से एक पुतला बना के उस पुतले को तीर्थङ्कर केवली भगवान के पास प्रश्न का समाधान करने के लिए भेजते हैं। उस पुतले को आहारक शरीर कहते हैं।

आहार पचाने की शक्ति को तैजस शरीर कहते हैं और कर्म पुद्गल के समूह को कारमण शरीर कहते हैं। ये दोनों शरीर प्रत्येक सांसारिक जीव के होते हैं।

८वें बोल योग १५—सत्य मन योग, असत्य मन योग, मिश्र मन योग, व्यवहार मन योग, सत्य भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा, व्यवहार भाषा, औदारिक योग, औदारिक मिश्र योग, वैक्रिय योग, वैक्रिय मिश्र योग, आहारक योग, आहारक मिश्र योग, कारमण योग।

विवेचन—मन, वचन, काय, की जुदी जुदी प्रवृत्ति को योग कहते हैं।

नवबें बोल उपयोग १२—पाँच ज्ञान (मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्याय ज्ञान, केवल ज्ञान) तीन अज्ञान (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान) चार दर्शन (चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, केवल दर्शन)।

विवेचन—जिसके द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना जावे, पदार्थ का विज्ञान हो उसे उपयोग कहते हैं। उपयोग के दो भेद हैं, सामान्य और विशेष। सामान्य रूप से जानना दर्शनोपयोग है और विशेष रूप से जानना ज्ञानोपयोग है।

[बोल] कर्म ८—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

विवेचन—राग द्वेषादि परिणामयुक्त क्रिया करते हुए आत्मा के साथ कार्मण वर्गणा के पुद्गलों का जो बन्ध होता है, उसे कर्म कहते हैं।

जो ज्ञान गुण को ढांके वह ज्ञानावरणीय, दर्शन गुण को ढांके वह दर्शनावरणीय, साता या असाता का अनुभव करावे वह वेदनीय, सम्यक्त्व चारित्र गुण को ढांके, सत असत् का विवेक भुलावे वह मोहनीय, अमुक समय तक किसी योनि में जीव को रोक रखे वह आयु कर्म, जिससे गति जाति आदि विविध पर्याय प्राप्त हो वह नाम कर्म, उच्च या नीच की भावना या ऊँचा नीचापन जिससे हो वह गोत्र कर्म और उद्योग करने पर भी कार्य सिद्ध न होने दे वह अन्तराय कर्म कहा जाता है ।

ग्यारहवें चौदह गुणस्थान ४—मिथ्यात्व गुणस्थान, सास्वादन गुणस्थान, मिश्र गुणस्थान, अविरति सम्यक् दृष्टिगुणस्थान, देशविरति गुण स्थान, प्रमत्त साधु गुणस्थान, अप्रमत्त साधु गुणस्थान, नियतिबादर गुणस्थान, उपशान्त मोह गुणस्थान, क्षीण मोह गुणस्थान, सयोगी केवली गुणस्थान, अयोगी केवली गुणस्थान ।

विवेचन—गुण के स्थान को गुणस्थान (गुणठाणा) कहते हैं। अर्थात् कषाय और योग के निमित्त से सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र रूप आत्मा के गुणों के तारतम्य(न्यूनाधिक यानी अवस्था विशेष) को गुणस्थान कहते हैं। जैसे जैसे मोह कर्म की प्रकृतियाँ छूटती जाती हैं, वैसे वैसे आत्मा में गुणों की वृद्धि होती है। उस गुणवृद्धि को गुणस्थान कहते हैं।

(शेष द्वितीय भाग में)

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री लालाजी रणजीतसिंहजी कृत

श्री बृहदालोयणा के उपयोगी दोहे

सिद्ध श्री परमात्मा, अरिगंजन अरिहंत ।
इष्टदेव वंदू सदा, भयभंजन भगवंत ॥ १ ॥
अरिहंत सिद्ध समरूं सदा, आचारज उवज्झाय ।
साधु सकल के चरन कूँ वंदू शीस नमाय ॥ २ ॥
शासन नायक समरिये, भगवंत वीर जिनंद ।
अलिय[1] विघन दूरे हरे, आपे परमानंद ॥ ३ ॥
अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भंडार ।
श्रीगुरु गौतम समरिये, वंछित फल दातार ॥ ४ ॥

---

1 वैरी को दमन करने वाले, १ पाप ।

श्री गुरुदेव प्रसाद से, होत मनोरथ सिद्ध । ~ ~
ज्युं घन[1] बरसत वेलितरु, फूल फल्न की वृद्ध ॥ ५ ॥
पंच परमेष्टी देव को, भजनपुर पहिचान ।
कर्म अरि भाजे सभी, होवे परम कल्याण ॥ ६ ॥
श्री जिनयुगपद कमल से, मुझ मन भमर बसाय ।
कब ऊगे वो दिन[2] करूँ, श्रीमुख दर्शन पाय ॥ ७ ॥
प्रणमी पदपकज[3] भनी, अरिगजन अरिहंत ।
कथन करूं अब जीव को, किंचित मुझ विरतंत[4] ॥ ८ ॥
आरम्भ विषय कषाय वस, भमीयो काल अनंत ।
लख चौरासी जोनि में, अब तारो भगवंत ॥ ९ ॥
देव गुरु धर्म सूत्र में, नवतत्वादिक जोय ।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कड मोय ॥ १० ॥
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, भरियो रोग अथाग ।
वैद्यराज गुरु सरण से, औषध ज्ञान वैराग ॥ ११ ॥
जे मैं जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार ।
प्रभु तुमारी साख से, बारंबार धिक्कार ॥ १२ ॥
बुरा बुरा सब को कहे, बुरा न दीसे कोय ।
जो घट शोधू आपको, तो मोसु बुरा न कोय ॥ १३ ॥

---

१ पानी २ दोनों चरणों, ३ सूर्य ४ कमल ५ हकीकत, ६ मेरेसे ।

कहेवा में आवे नहीं, अवगुण भरया अनंत ।
लिखया में क्यु कर लिखु, जाणो श्री भगवंत ॥ १४ ॥
करुणानिधि कृपा करी, कठिन कर्म मोय छेद ।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, करजो ग्रन्थी[1] भेद ॥ १५ ॥
पतित उद्धारण नाथजी, अपनो विरुद विचार ।
भूल चूक सब म्हारी, खमाये वारंवार ॥ १६ ॥
माफ करो सब म्हारा, आज तलक का दोष ।
दीन दयाळ देवो मुझे, श्रद्धा शील संतोष ॥ १७ ॥
आतम निंदा शुद्ध भणी, गुणवंत वंदन भाव ।
रागद्वेष पतला करी, सब से समता स्वभाव ॥ १८ ॥
छूटु पिछला पाप से, नवा न बंधु कोय ।
श्रीगुरुदेव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय ॥ १९ ॥
परिग्रह ममता तजि करी, पंच महाव्रत धार ।
अन्त समय आलोयणा, कर संथारो सार ॥ २० ॥
तीन मनोरथ[2] ए कह्या, जो ध्यावे[3] नित्य मन्न ।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिव सुख धन्न ॥ २१ ॥
अरिहंत देव निर्ग्रंथ गुरु, संवर निर्जरा धर्म ।
केवलि भाषित शासतर, एहि जैन मत मर्म ॥ २२ ॥

---

१ गांठ का तोड़ना, २ मन की अभिलाषा, ३ चिन्तवना।

आरंभ विषय कषाय तज, शुद्ध समकित अवधार।
जिन आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार ॥ २३ ॥

क्षण[1] निकमो रहनो नहीं, करनो आतम काम।
भणनो गुननो शीखणो, रमणो ज्ञान आराम[2] ॥ २४ ॥

अरिहंत सिद्ध सब साधुजी, जिन आज्ञा धर्मसार।
मंगलिक उत्तम सदा, निश्चय शरणा चार ॥ २५ ॥

घड़ी घड़ी पल पल सदा, प्रभु स्मरण को चाह।
नर भव सफलो जो करे, दान शील तप भाव ॥ २६ ॥

आत्म दशा का विचार

सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोइ सिद्ध होय।
कर्म मैल का अन्तरा, बूझे[3] विरला कोय ॥ १ ॥

कर्म पुद्गल रूप है, जीव रूप है ज्ञान।
दो मिलकर बहु रूप है, विछड्या[4] पद निरवाण ॥ २ ॥

जीव करम भिन्न भिन्न करो, मनुष्य जन्म कु पाय।
ज्ञानातम वैराग्य से, धीरज ध्यान जगाय ॥ ३ ॥

द्रव्य थकी जीव एक है, क्षेत्र असंख्य प्रमाण।
काल थकी सर्वदा रहे, भावे दर्शन ज्ञान ॥ ४ ॥

---

१ थोड़ा दर भी, २ बगीचा ३ समझे, ४ अलग हुआ,

गर्भित[१] पुद्‌गल पिंड में, अलख अमूरति देव ।
फिरे सहज भव चक्र में, यह अनादि की टेव[२] ॥ ५ ॥
फूल अतर घी दूध में, तिल में तेल छिपाय ।
यूं चेतन जड़ करम संग, बंध्यो ममता दुःख पाय ॥ ६ ॥
जो जो पुद्‌गल की दशा ते निज माने हंस[५] ।
याही भरम विभावतें,[६] बढ़े करम को वंस ॥ ७ ॥
रतन बंध्यो गठड़ी विषे, सूर्य छिप्यो घनमांह ।
सिंह पिंजरा में दियो, जोर चले कछु नांहि ॥ ८ ॥
ज्यु बंदर मदिरा पिया, बिच्छू डंकित गात ।
भूत लग्यो कौतुक करे, त्यु कर्मों का उत्पात ॥ ९ ॥
कर्म संग जीव मूढ है, पावे नाना[७] रूप ।
कर्मरूप मल के टले, चेतन सिद्ध सरूप ॥ १० ॥
शुद्ध चेतन उज्ज्वल दरब, रह्यो कर्म मल छाय ।
तप संयम धोवता, ज्ञान ज्योति बढ़ जाय ॥ ११ ॥
ज्ञान थकी जाने सकल, दर्शन श्रद्धा रूप ।
चरित्र से आवत रुके, तपस्या क्षपन सरूप ॥ १२ ॥
कर्म रूप मल के शुधे, चेतन चांदी रूप ।
निर्मल ज्योति प्रगट भया, केवल ज्ञान अनूप[९] ॥ १३ ॥

---

१ मिला हुवा २ महा आत्म, ३ आकार रहित, ४ आदत, ५ आत्मा, ६ परपरिणती ७ अनेक, ८ मल, ९ उपमारहित ।

शील रतन महोटो रतन, सब रतना की खान ।
तीन लोक की सपदा, रही शील में आन ॥ ३२ ॥
शीलें सर्प न आमडे[1], शीलें शीतल आग ।
शीले अरि करि[2] केसरी, भय जावे सब भाग ॥ ३३ ॥
शील रतन के पारगू, माठा मोले वैन ।
सब जग स ऊचा रहे, जो नीचा राखे नैन ॥ ३४ ॥
तन[3]मन कर वचन कर, दत न काहु दु ख ।
कम रोग पातक झडे, दखत वाका मुख ॥ ३५ ॥

१ डमें २ हस्ती ३ सार ।

नाट—ठाकुर रणजीतसिंहजी कृत बृहदालोयणा में और भी दोहे उपदेशमय एव बोधप्रद है किन्तु पाठ्यक्रम म इतने ही दोहे रखे गये हैं इस कारण यहाँ इतने ही दिये हैं ।

१ ☞ शिक्षक महाशयों को चाहिये कि दोहा पढ़ाते समय अर्थ और भाव भी साथ में समझाते रहे ।

सुख दुःख दोनुं वसत है, ज्ञानी के घट माहि ।
गिरि' सर' दीसे मुकर में, भार भींजवो नाहि ॥ २३ ॥
जों जौ पुद्गल परसना, निश्चे फरसे सोय ।
ममता समता भाव से, कर्मबंध क्षय होय ॥ २४ ॥
बान्ध्या सोही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव ।
फल निर्जरा होत है, यह समाधि चित्त चाव ॥ २५ ॥
बान्ध्या बिन भुगते नहीं, बिन भुगत्या न छुटाय ।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय ॥ २६ ॥
पथ' कुपथ' घट वध करी, रोग हानीवृद्धि थाय ।
युं पुण्यपाप किरिया करी सुख दुःख जग में पाय ॥ २७ ॥
सुख दिया सुख होत है, दुःख दिया दुःख होय ।
आप हणे नहीं अवर कु, तो आपन हणे न कोय ॥ २८ ॥
ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष ।
इनकुं कभी न छांडिये, श्रद्धा शील संतोष ॥ २९ ॥
सत मत छोडो हो नरा, लक्ष्मी चौगुनी होय ।
सुख दुःख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय ॥ ३० ॥
गो धन गज धन रत्न धन, कंचन खान सुखान ।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूल समान ॥ ३१ ॥

---

१ पर्वत २ तालाव ३ गुणकारी, ४ अवगुणकार ।

शील रतन महोटो रतन, सब रतना की खान ।
तीन लोक की सपदा, रही शील मे आन ॥ ३२ ॥
शीलें सर्प न आभडे[1], शीलें शीतल आग ।
शीले अरि करि[2] केसरी, भय जावे सब भाग ॥ ३३ ॥
शील रतन के पारखू, माठा बोले बैन ।
सब जग से ऊचा रहे, जो नीचा राखे नैन ॥ ३४ ॥
तन मन कर वचन कर, देत न काहु दु ख ।
कर्म रोग पातक झडे, देखत वाका मुख ॥ ३५ ॥

१ डसे २ हस्ती, ३ सारे ।

नाट—लाला रणजीतसिहजी कृत बृहदालोयणा म और भी दोहे शिक्षामय एव बोधप्रद ह किन्तु पाठ्यक्रम म इतने ही दोहे रख गये हैं। कारण यहाँ इतने ही दिये हैं ।

☞ शिक्षक महाशयों का चाहिये कि दोहा पढ़ाते समय अर्थ और भाव भी साथ में समझाते रहे ।

श्रावक प्रतिक्रमण

मूल पाठ
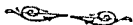
॥ अथ इच्छामिण भंते का पाठ ॥

इच्छामि ण भंते तुब्भेहि, अब्भणुण्णायसमाणे देवसिय पडिक्कमणं ठाएमि, देवसि णाण, दंसण, चरित्ताचरित्त तवअइयारचिंतवणट्ठ करेमि काउ-स्सग्ग ॥

॥ अथ इच्छामि ठामि का पाठ ॥

इच्छामि ठाएमि ❀ काउस्सग्ग जो मे देवसिओ

❀ आवश्यक आगमों के पृष्ठ ७७८ में 'ठाइउं' (करने के लिए) है। किन्तु 'ठामि' पाठान्तर प्रचलित है। इसलिये यही रक्खा गया है।

अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावग्गपाउग्गो, नाणे तह दसणे चरित्ताचरित्ते, सुए, समाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ २ ॥

॥ ज्ञान के अतिचार का पाठ ॥

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा-सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार आगमरूप ज्ञान के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं सुट्ठुदिण्णं दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झाइयं सज्झाए न सज्झाइयं, भणतां गुणतां विचारतां ज्ञान और ज्ञानवंत की आशातना की हो तो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ३ ॥

॥ दर्शन सम्यक्त्व के अतिचार का पाठ ॥

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवाय सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्त तत्त इय सम्मत्त मए गहियं ॥ १ ॥
परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवण वावि ।
वावण्णकुदंसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीसमकितरत्न पदार्थ के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ–श्रीजिन वचन सचा कर श्रद्धया न हो, प्रतीत्या न हो, रुच्या न हो १, पर दर्शन की अकांक्षा की हो २, परपाखंडी की प्रशंसा की हो ३, पर पाखंडी का परिचय किया हो ४, धर्मफल प्रति सदेह किया हो ५, मेरा सम्यक्त्वरूपरत्न पर मिथ्यात्वरूपी रज-मैल लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ४ ॥

॥ बारह व्रत के अतिचार ॥

पहला स्थूल–प्राणातिपातविरमणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ–रोष वश गाढा बन्धन बांधा हो १, गाढा घाव घाला हो २, अंगपांग का छेद (चाम आदि का छेद) किया हो ३, अधिक भार भरा हो ४, भात पाणी का

विच्छेद किया हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं, अर्थात्-जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो तो उससे उत्पन्न हुआ मेरा पाप निष्फल हो।

दूजा स्थूल-मृषावाद विरमणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-सहसात्कार से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो १, रहस्य (गुप्त) बात प्रगट की हो २, अपनी स्त्री* का मर्म प्रकाशित किया हो ३, मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो ४, कूड़ा लेख लिखा हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीजा स्थूल-अदत्तादन-विरमणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो १, चोर को सहायता दी हो २, राज्य विरुद्ध काम किया हो ३, कूड़ा तोल, कूड़ा माप किया हो ४, वस्तु में भेलसभेल किया हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

---

*स्त्री को "अपने पति" बोलना चाहिए।

चौथास्थूल ❀ स्वदार संतोष परदार ववर्जिन रूपमैथुन विरमणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं |' इत्तरियपरिग्गाहिया से गमन किया हो १, अपरिग्गाहिया ‡ से गमन किया हो २, अनगक्रीड़ा की हो ३, पराये का विवाह नाता कराया हो ४, काम-भोग की तीव्र अभिलाषा की हो ५, जो मैं देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

पाचवा स्थूल-परिग्रह-परिमाणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं-खेत्त वत्थु का परिमाण अतिक्रमण (उल्लघन) किया हो १, हिरण्ण सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो

❀ स्वदार संतोष परदारविवर्जनरूप, ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये और स्त्री को स्वपति सन्तोष परपुरुषविवर्जनरूप, ऐसा बोलना चाहिये ।

† छोटी उम्र वाली (अपरिपक्व अवस्था) विवाहिता स्त्री से गमन किया हो ।

‡ अपरिगृहिता—अपरिग्गाहिया—वाग्दान (सगपन) होने पर भी विधि के अनुसार विवाह होने से पहले उससे गमन किया हो । यद्यपि आवश्यक टीका में—इतर परिग्गहियागमणे और अपरिग्गहियागमणे का अर्थ अन्य रीति से किया है परन्तु वर्तमान समय में विशाप रूप से ग्राह्य है ।

२, धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो ३, दोपद-चोपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो ४, कुविय-(सोना चादी के सिवाय और) धातु का परिमाण अतिक्रमण किया हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

छठे दिशिव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-उड्ढ (ऊँची) दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, अधो (नीची) दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो २, तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो३, क्षेत्र बढाया हो ४, क्षेत्र-परिमाण को भूल जाने से पथ का सदेह पड़ने पर आगे चला हो ५, जो में देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

सातवा उपभोग परिभोग-परिमाणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-पचक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो १, सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो २, अपक्व (अधकच्चा) का आहार किया हो ३ दुपक्व (ओघ गया) का आहार किया हो, ४, तुच्छोपधि का आहार किया हो ५, जो मे देवसियो अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

पन्द्रह कर्मादान सम्बन्धी कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ—इङ्गालकम्मे १, वणकम्मे २, साडीकम्मे ३, भाडीकम्मे ४, फोडीकम्मे ५, दन्तवणिज्जे ६, लक्खवणिज्जे, ७, रसवणिज्जे ८, केसवणिज्जे ९, विसवणिज्जे १०, जन्तपीलणकम्मे ११, निल्लछणकम्मे १२, दवग्गिदावणया १३ सरदह- तलाव सोसणया १४, असईजणपोसणया १५, जो मे देवसियो अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

आठवें अनर्थ दण्ड–विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ–कामविकार पैदा करने की कथा की हो १, भण्ड–कुचेष्टा की हो २, मुखरीवचन† बोला हो ३, अधिकरण का सग्रह बढ़ाया हो ❀ ४, उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

नववें सामायिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-मन वचन और काया के अशुभ योग प्रवर्त्ताये हों ३, सामायिक की स्मृति न की हो ४, समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी

---

† वाचा से बिना प्रयोजन की गप्पें मारी हों।
❀ अधिकरण आरभ का साधन-हथियार औजार ।

हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

दशवें देशावगासिक-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-नियम से बाहिर की वस्तु मगवाई हो १, भिजवाई हो २, शब्द करके चेताया हो ३, रूप दिखा करके अपने भाव प्रगट किए हों ४, ककर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

ग्यारहवें पडिपुन्न-पौषध-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-पौषध में शय्या सथारा न देखा हो या अच्छी तरह न देखा हो १, प्रमार्जन (पडिलेहण) न किया हो या बेदर-कारी से किया हो २, उच्चार-पासवण परठने की भूमि अच्छी तरह न देखी हो या अविधि से देखी हो ३, पुजी न हो या पुजी हो तो अच्छी तरह न पुजी हो ४, उपवासयुक्त पोषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

बारहवें अतिथिसविभाग-व्रत के विषय जो कोई [illegible]र लगा हो तो

(कल्पनीय) वस्तु सचित्त में डाली हो १, सचित्त से ढाकी हो २, आप सुजता होते दूसरा-दूसरा के पास से दान दिराया होय (अपनी वस्तु पराई कही) हो ३, मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो ४, भोजन समय टाल कर साधुओं से प्रार्थना की हो अथवा दान देने की भावना न आई हो ५, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

॥ संलेखना के पाच अतिचार के पाठ ॥

संलेखना के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ-इहलोगासंसप्पओगे परलोगासंसप्पओगे, जिवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे (मा मज्झ हुज्ज मरणंतेवि सड्ढापरूवणम्मि अन्नहाभावो) अर्थात् मरणान्त कष्ट के होने पर भी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा में फरक आया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

नोट – इन अतिचारो को कायोत्सर्ग में चिंतवन किया जाय, उस समय जो मे देवसिओ–अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं, ऐसा न बोलते हुए तस्स आलोउँ कहना चाहिए ।

॥ अठारह पाप स्थान का पाठ ॥

अठारह पापस्थान आलोउ– (१) प्राणातिपात, (२) मृषावाद, (३) अदत्तादान, (४) मैथुन, (५) परिग्रह, (६) क्रोध, (७) मान, (८) माया, (६) लोभ, (१०) राग, (११) द्वेष, (१२) कलह, (१३) अभ्याख्यान, (१४) पैशुन्य, (१५) परपरिवाद, (१६) रति-अरति, (१७) माया मृषावाद (१८) मिथ्यादर्शन-शल्य, इन अठारह पापस्थानों में से किसी का मैंने सेवन किया हो कराया हो या करते हुए का अनुमोदन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ ।

॥ इच्छामि खमासमणो का पाठ ॥

इच्छामि खमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए निसीहिआए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि अहोकाय कायसंफास खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताण बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो? जत्ता भे ? जवणिज्जं च भे ? खामेमि खमासमणो! देवसिअं वइक्कमं । आवस्सियाए पडिक्कमामि । खमासमणाण देवसिआए आसायणाए तितीसन्न-यरि मिच्छाए मणदुक्कडाए

कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोभाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए, सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए, जो मे देवसिओ अइआरो कओ तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गिरहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

॥ तस्स सव्वस्स का पाठ ॥

तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स दुब्भासियदुच्चिंतिय-दुच्चिट्ठियस्स आलोयंतो पडिक्कमामि।

॥ चत्तारि मगल का पाठ ॥

चत्तारि मगल, अरिहन्ता मगल, सिद्धा मगल, साहू मगल, केवलिपण्णत्तो धम्मो मगल, चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्ता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तम। चत्तारि सरण पवज्जामि, अरिहन्तासरण पवज्जामि, सिद्धासरण पवज्जामि, साहूसरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्त धम्म सरण पवज्जामि।

अरिहन्तों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवलिपरूपित धर्म का शरणा,

ये चारूँ शरणा दुर्गति हरणा, और शरणा नहीं कोय।
जो भवि प्राणी आदरे, तो अक्षय अमर पद होय॥१॥

॥ दसण समकित का पाठ ॥

दसणसम्मत्त-परमत्थसथ मो वा, सुदिट्ठपरमत्थ सेवणा वावि। वावणकुदसणवज्जणाय सम्मत्त सद्दहणा। एव समणोपासएण सम्मत्तस्स पच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, त जहा ते आलोउ-सका, कखा, विनिगिच्छा परपासडीप-ससा, परपासडीसथवो, एव पाच अतिचार मध्ये जो कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥

बारह व्रतो तथा अतिचारों के पाठ

पहिला अणुव्रत-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण त्रसजीव—बेइदिय तेइदिय चउरिंदिय, पचिदिय जान के पहिचान के सङ्कल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी शरीर के भीतर में पीडाकारी, सापराधी को छोड़ निपराधी को आकुट्टी की बुद्धि [हनने की बुद्धि] से हनने का पचक्खाण जावज्जीवाए दुविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा,

कायसा ऐसे पहिले स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत के पच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउ—बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणवुच्छेए। जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमण, कन्नालिए, गावालिए, भोमालिए, णासा वहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिज्जे (सक्खिकरणे मोटो कूडी साख) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पचक्खाण, जाव जीवाए दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा, कायसा, एव दूजा स्थूल मृषावादविरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा, त जहा ते आलोउ सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमतभेए, मोसोवएसे, कूड लेहकरणे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

तीजा अणुव्रत थूलाओ आदिन्नादाणाओ वेरमण खात खनकर, गांठ खोलकर, ताले पर कुंजी लगा कर, मार्ग में चलते को लूट कर पड़ी हुई सधणियाती मोटी वस्तु जान कर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पचक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार

सम्बन्धी तथा पड़ी निर्ध्रमी वस्तु के उपरान्त अद-त्तादान का पचक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, *एसा तीजा स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पच अइ-आरा* जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ तेनाहडे, तक्करप्पओगे विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुलकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

चौथा अणुव्रत—थूलाओ मेहुणाओ वेरमण, सदारसन्तोसिए, ॐ अवसेसम् मेहुणविहिं का पचक्खाण जावजीवाए, देवदेवी सम्बन्धी दुविहम् तिविहेणम् न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा, तथा मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी एगविहम् एगविहेणम् न करेमि कायसा, एवम् चौथा स्थूल मेहुणवेरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ—इत्तरिय-परिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनगक्रीडा परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइआरो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

ॐ स्त्रियों व कन्याओं को सभर्ता सतोसिए कहना चाहिए।

पाचवा अणुव्रत थूलाश्रो परिग्गहाश्रो वेरमण खेत्तवत्थु का यथा परिमाण, हिरण्णसुवण्ण का यथा परिमाण, धन धान्य का यथा परिमाण, दुपयचउप्पय का यथापरिमाण, कुवियधातु का यथापरिमाण जो परिमाण किया है उसके उपरात अपना करके परिग्रह रखने का पचक्खाण, जावजीवाए एगविह तिविहेणम् न करेमि मणसा, वयसा, कायसा, एव पाचवा स्थूल परिग्रह परिमाण—व्रत के पच अइ आरा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धणधन्नप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे कुवियधातुप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिश्रो अइयारो कश्रो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥

छठा दिशिव्रत – उड्ढदिशि का यथापरिमाण अहोदिशि का यथापरिमाण, तिरियदिशि का यथा परिमाण एव यथापरिमाण किया है, इसके उपरात आगे जाकर पाच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, जाव जीवाए * दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा, एव छठे दिशिव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा,

* 'एगविह तिविहेण' भी कोई कोई बोलते हैं ।

तजहा ,ते आलोउ—उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरिअदिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइअन्तरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

सातरा अणुव्रत—उवभोगपरिभोगविहिं पच्च क्खायमाणे उवलणियाविहिं १ दंतणविहिं २, फलविहिं ३, अब्भगणविहिं ४, उवट्टणविहिं ५, मज्जणविहिं ६, वत्थविहिं ७, विलेवणविहिं ८ पुप्फविहिं ९, आभरणविहिं १०, धूवविहिं ११, पेज्जविहिं १२, भक्खणविहिं १३, ओदणविहिं १४ सूपविहिं १५, विगयविहिं १६, सागविहिं १७, महुरविहिं १८, जिमणविहिं १९, पाणीविहिं २०, मुखवासविहिं २१, वाहणविहिं २२, उवाणहविहिं २३, सयणविहिं २४, सचित्तविहिं २५ दव्वविहिं २६ इत्यादि का यथापरिमाण किया है इसके उपरात उवभोग परिभोग वस्तु को भोगनिमित्त से भोगने का पचक्खाण, जावजीवाए, एगविहम् तेविहेणम् न करेमि मणसा, वयसा, कायसा, एवम सातरा उवभोग परिभोग दुविहे पन्नते, तजहा—भोयणाओ य, कम्मओ य, भोयणाओय समणोवासयाणम् पच अइयारा जाणियव्वा न

समायरियव्वा, तजहा—आलोउ—सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पोलिओसहिभक्खणया दुप्पोलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया कम्मओ ण समणोवासयाण पन्नरस कम्मा दाणइ जाणियव्वाइ न समायरियव्वाइ, तजहा ते आलोउ—इगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दन्तवणिज्जे, लक्ख वणिज्जे, रसवणिज्जे, केसवणिज्जे, विसव णिज्जे, जन्तपीलणकम्मे, निल्लञ्छणकम्मे, दवग्गि दावणया, सरदहतलायसोसणया, असईजणपो सणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

आठवा, अणट्ठादण्डविरमणव्रत--चउव्विहे अण ट्ठादडे पण्णत्ते, तजहा -अवज्झाणायरिए, पमाया चरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे, एव आठवा अणट्ठादट सेवन का पच्चक्खाण (जिसमे आठ आगार-आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहि ❀ अन्नत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिवि-

❀ ये आठ अर्थादण्ड हैं जो आगार नहीं होते हैं ।

हेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा, कायसा, एव आठवा अणट्ठादण्डविरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ- कंदप्प, कुक्कुइए मोहरिए, सजुत्ताहिगरणे, उवभोग- परिभोगाइरत्ते जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

नववाँ सामायिक व्रत—सव्व सावज्ज जोग पचक्खामि जावनियम पज्जुवासामि दुविह तिवि- हेण न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा, ऐसो सद्दहणा परूपणा तो है सामायिक का अव सर आये सामायिक करूँ तब फरसना करके शुद्ध होऊँ एव नववें सामायिकव्रत के पच अइयारा जाणि यव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ-मण दुप्पणिहाणेण, वयदुप्पणिहाणेण, कायदुप्पणिहा- णेण, सामाइयस्स सइ अकरणयाए सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणयाए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

दसवा देशावगासिकव्रत दिनप्रति प्रभात से प्रारभ करके पूर्वादिक छहों दिशा की जितनी भूमि- का की मर्यादा रक्खो हो उसके उपरान्त आगे

जाकर पचि आश्रव सेवने का पचक्खाण, जाव अहोरत्त दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा जितनी भूमिका की हद रक्खी उसम जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है उसके उपरान्त उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पचक्खाण जाव अहोरत्त, दुविह तिविहेण न करेमि मणसा, वयसा, कायसा, ऐसी मारी सद्दहणा पम्वणा है फरसना करूँ तब शुद्ध होऊँ एव दसवा दसाव गासिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आणोउ-आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रुवाणुवाए, वहियापुग्गलपक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

ग्यारहवा पडिपुन पोषधव्रत–असण पाण खाइम साइम का पचक्खाण, अबभसेवन का पचक्खाण, अमुक मणिसुवर्ण का पचक्खाण, माला-वन्नग विलेवणका पचक्खाण, सत्थ-मुसलादिक सावज्जजोग सेवन का पचक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविह तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा, कायसा, ऐसी सद्दहणा पम्वणा तो है पोसह का अवसर आये पोषध करूँ

तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, एव ग्यारहवा पडि-
पुन्नपोषधव्रत का पच अइयारा जाणियव्वा न समा
यरियव्वा, तजहा ते आलोउ -अप्पडिलेहिय-दुप्प-
डिलेहिय सेज्जास थारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-
सेज्जासथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय उचार-
पासवण भूमी, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय, उचारपा-
सवणभूमी, पोसहस्स सम्म अणणुपालणया, जो मे
देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

बारहवा अतिथिसविभागव्रत--समणे निग्गथे
फासुय एसणिज्जेणं--असणपाणखाइमसाइम वत्थप
डिग्गह कवलपायपुछणेण पाडिहारियपीढफलगसेज्जा
सथारएण ओसहभेसज्जेण पडिलाभेमाणे विह-
रामि, ऐसी मारी सद्दहणा परूपणा है, साधुसाध्वी
का योग मिलने पर निर्दोष दान दू तव शुद्ध होऊँ।
एव बारहवें अतिथिसविभागव्रत के पच अइयारा
जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोउ--
सचित्तनिक्खेवणया, सचितपिहणया कालाइक्कमे
परोवएसे मच्छरियाए जो मे देवसिओ अइयारो
कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

(शेष द्वितीय भाग में)

सम्यक्त्व के ६७ बोल

पहले—श्रद्धान ४, दूसरे—लिंग ३ तीसरे विनय १०, चौथे—शुद्धता ३, पांचवे—लक्षण ५, छठे—दूषण ५, सातवें—भूषण ५, आठवें—प्रभाविक ८, नवमें—आगार ६, दसवें—यतना ६, ग्यारहवें—स्थानक ६, बारहवें—भावना ६ ।

पहला बोल—चार श्रद्धान (सरदहणा)

१ परमार्थ का परिचय करे, अर्थात् नव तत्व का ज्ञान प्राप्त करे ।

२ परमार्थ को जानने वाले की गुरुजन की सेवा करे ।

३ जिसने सम्यक्त्व वमन कर दिया (छोड़ दिया) हो, उसकी संगति न करे (चाहे साधु का बाहरी लिंग भले ही हो)

४ कुतीर्थियों (अन्य लिंगी अन्यदर्शनी) की संगति से दूर रहे ।

दूसरा बोल—तीन लिंग

१ जैसे तरुण पुरुष रागरंग मे अनुराग रखता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी मे अनुरक्त रहे ।

२ जैसे तीन दिन का भूखा आदमी घ्यार आदि मनगमता भोजन आदर सहित करता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी आदर सहित सुने ।

३ जैसे अनपढ़ को पढ़ने की चाह रहती है, और पढ़ने का मौका मिलते ही हर्षित होता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी सुनकर हर्षित हो ।

तीसरा बोल—दस विनय

१ अरिहंत की विनय भक्ति करे ।

२ सिद्ध की विनय-भक्ति करे ।

३ आचार्य की विनय भक्ति करे ।

४ उपाध्याय की विनय भक्ति करे ।

५ स्थविर की विनय भक्ति करे ।

६ कुल की विनय भक्ति करे ।

७ गण (गच्छ) की विनय भक्ति करे ।

८ चतुर्विध संघ का विनय भक्ति करे ।

९ साधर्मी की विनय भक्ति करे ।

१० क्रियावान का विनय भक्ति करे ।

चौथा बोल—तीन शुद्धता

१ मन की शुद्धि—मन में श्री वीतराग देव का ध्यान करें और किसी का न करे ।

२ वचन की शुद्धि—वचन से वीतराग देव का गुणगान करे और किसी देव का न करे ।

३ काय की शुद्धि—काय से श्री वीतराग देव को नमस्कार करे और किसी देव का न करे ।

पाँचवाँ बोल—पाँच लक्षण

१ शम—[प्रशम] अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ का उदय न होना ।

२ संवेग—वैराग्य भाव मोक्ष की अभिलाषा होना ।

३ निर्वेद—आरंभ परिग्रह से निवृत्त होना—संसार से उदासीन होना ।

४ अनुकम्पा—दूसरे जीव को दुःखी देखकर करुणा आना

५ आस्था—जिन वचन पर विश्वास रख कर दृढ रहना।

छठा बोल—सम्यक्त्व के पांच दूषण

१ शंका—जिन भगवान् के वचनों में सन्देह (शंका) रखना दोष है। जैसे नरक स्वर्गादि है या नहीं? कल्पना ही है क्या?

२ कांक्षा—अन्यमतियों का आडम्बर देख उनकी चाह करना दोष है। अथवा सांसारिक लाभ या लब्धि आदि की वाञ्छा करना।

३ विचिकित्सा—करनी के फल में सन्देह रक्खे अथवा साधु साध्वी के वस्त्र मलिन देख कर घृणा करे तो दोष है।

४ पर पाखण्डी प्रशंसा-अन्य मतवालों की कीर्ति (तारीफ) करना दोष है।

५ पर पाखण्डी संस्तव अन्य तीर्थियों के पास आवागमन रखना और उनकी संगति करना दोष है।

सातवाँ बोल—सम्यक्त्व के पांच भूषण

१ जिनशासन में धीरजवान् हो।

२ जिन शासन की प्रभावना करे और उसके गुणों को दिपावे प्रगट करे ।

३ जैन शासन को मानने वाले सुसाधु साध्वी आदि गुणवानों की सेवा-भक्ति करे ।

४ अन्य पुरुष का धर्म में स्थिर करे और जिन मार्ग में चतुर हो ।

५ चतुर्विध संघ की सेवा करे ।

आठवाँ बोल—आठ प्रभाविक

१ जिस काल में जितने सूत्र उपलब्ध हों, उतने पढ़कर अन्य जीवों को प्रतिबोध देकर धर्मकी उन्नति करे ।

२ धर्मकथा सुनने में चतुर होवे ।

३ प्रत्यक्ष, हेतु, दृष्टान्त पूर्वक अन्यमतियों से वाद करके धर्म को दिपावे प्रभावना करे ।

४ निमित्तज्ञान से भूत भविष्यत वर्तमान काल की बात जाने ।

५ कठिन तपस्या करके धर्म की उन्नति करे ।

६ अनेक विद्याओं का जानकार होवे ।

७ प्रसिद्ध व्रत (ब्रह्मचर्य आदि खास खन्ध) लेवे ।

✓८ शास्त्र के अनुसार कविता रचकर धर्म को उन्नति करे।

नववाँ बोल—छ आगार

१ राजा के हठ से अन्य तीर्थी को वंदना करे, तो सम्यक्त्व में दोष लगता है परन्तु भंग नहा होता।

२ कुटुम्ब जाति पच आदि क दवाव से अन्य तीर्थिक को वन्दनादि करे, तो सम्यक्त्व म दोष लगता है, किन्तु भंग नहीं होता।

३ जोरावर—बलवान क डर म अन्यतीर्थिक को वंदनादि करे ता सम्यक्त्व म दोष लगता है, परन्तु भग नहीं होता।

४ दवता क डर से अन्य तीर्थियों को वन्दनादि करे, तो दोष लगता है, लेकिन सम्यक्त्व का भग नहा होता।

✓५ माता पिता गुरु आदिक क हठ स अन्यतीर्थी का वन्दनादि करे ता सम्यक्त्व म दोष लगता है, मगर भग नहीं होता।

६ आजीविका की कठिनाइ म पडने पर (अपने मालिक के दबाव स) अन्यतीर्थी को बन्दनादि करे तो सम्यक्त्व में दोष लगता है, किन्तु भग नहा होता।

दसवाँ बोल—समकित की ६ जयणा (यतना)

१ आलाप मिथ्यात्वी से बिना कारण न बोले और सम्यक् दृष्टि से बिना बोलाय भी ज्ञानचर्चा के लिए बोले।

२ संलाप मिथ्यात्वी से विशेष भाषण न करे और सम्यक् दृष्टि से बारम्बार ज्ञान चर्चा अवश्य करे।

३ दान मिथ्यात्वी को गुरु आदि बुद्धि से दान न देवे, अनुकम्पा दान देने की तीर्थङ्कर भगवान् की मनाइ नहीं है।

४ मान—मिथ्यात्वी का अधिक आदर सन्मान न करे, और सम्यक्त्वी का बहु आदर सम्मान करे।

५ मिथ्यात्वियों को वन्दना न करे।

६ गुणग्राम मिथ्यात्वी के यश का वर्णन न करे और सम्यक्त्वी के गुणों का वर्णन करे।

ग्यारहवाँ बोल—छ स्थानक

१ धर्म रूपी वृक्ष की सम्यक्त्व रूप जड़ है।

२ धर्म रूपी नगर का सम्यक्त्व रूप प्रकोटा है।

३ धर्म रूपी महल की सम्यक्त्व रूप नींव है।

४ धर्म रूपी आभूषण का सम्यक्त्व रूपी पटी है।

५ धर्म रूपी वस्तुओं का सम्यक्त्व रूपी दुकान है।

६ धर्म रूपी भाजन का सम्यक्त्व रूपी थाल है।

बारहवाँ बोल—छ भावनाएँ

१ जीव का लक्षण चेतना है।

२ जीव द्रव्य नित्य शाश्वत है।

३ जीव आठ कर्मों का कर्त्ता है।

४ जीव आठ कर्मों का भोक्ता है।

५ भव्य जीव आठ कर्मों का क्षय करके मोक्ष पा लेते हैं।

६ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र मोक्ष का उपाय है।

भगवान श्री आदिनाथ

श्लोक—

आनन्द मन्दिर सुपैमितमाद्धि विश्व
नाभेयदेव महित सकलाभव तम ॥
लब्ध्वा जयातियतया भव योधमादौ
नाभेयदेव महित सकलाभवन्तम ॥'

भावार्थ—हे सम्पत्ति रूपी विश्व के महान् जिनदेवेन्द्र ! युग के आदि में आपको पाकर समस्त मानुवृन्द अत्यन्त अद्भुतकारी संसार-रूपी यात्रा को जीतने में समर्थ हुआ है । मैं भी आपके चरणों का आश्रय लेता हूँ जो आनन्द का मन्दिर, देवताओं से पूजित, तथा शुभ लाभ के स्थान रूप है ।

पूर्वभव

यह जम्बू द्वीप, तिर्छे लोक के असंख्य द्वीपों के मध्य में है। इसकी लम्बाई—चौड़ाई, एक लाख योजन है। इसके अन्तर्गत, भरत, एरावत आदि मनुष्यों के निवास के दस क्षेत्र हैं।

भरत क्षेत्र में, क्षितिप्रतिष्ठित नामक एक नगर था। इस नगर के राजा का नाम प्रसन्नचन्द्र था। इसी नगर में, धन्नासार्थवाह नाम का एक प्रतिष्ठित, समृद्ध, एवं यशस्वी साहूकार रहता था। एक समय, धन्ना सेठ, व्यापार के निमित्त अन्य देश में जाने के लिये तैयार हुआ। उसने, नगर में यह घोषित किया कि 'मैं, व्यापारार्थ वसन्तपुर जा रहा हूँ, अतः मेरे साथ जो भी चलना चाहे, चले, मैं, उसकी सब प्रकार से सहायता करूँगा।' धन्ना सेठ की इस घोषणा के परिणाम स्वरूप, नगर के बहुत से लोग, धन्ना सेठ के साथ वसन्तपुर जाने के लिए तैयार हो गये। पूर्व समय का प्रवास, आज का तरह सरल न था। इसलिए आत्म रक्षा की दृष्टि से, प्रत्येक प्रवास करने वाले को, किसी न किसी के साथ की आवश्यकता रहा करती थी। धर्मघोष आचार्य को भी वसन्तपुर की ओर ही पधारना था, इसलिये वे भी अपने सन्तों सहित धन्ना सेठ के साथ हो लिये।

नगरके दूसरे लोगों, एव धर्मघोष आचार्य सहित, धन्ना सेठ, बसन्तपुर की ओर रवाना हुआ। चलते-चलते, मार्ग में ही वर्षा ऋतु आ गई, इस कारण सार्थवाह धन्ना सेठ, को पड़ाव डाल कर रहना पड़ा। धन्ना सेठ अपने साथियों सहित पड़ाव डाल कर रह गया है, यह देख कर, धर्मघोष आचार्य भी, पहाड़ की कन्दराओं में चातुर्मास बिताने के लिये चले गये। संयोगवश, धन्ना सेठ को इन मुनियों का स्मरण न रहा, इस कारण वह, मुनियों की सार सम्हाल भी न कर सका। जब चातुर्मास समाप्त हुआ, और फिर आगे चलने की तैयारी होने लगी, तब धन्ना सेठ को मुनियों का स्मरण हुआ। वह कहने लगा, कि मेरे साथ जो मुनि आये थे, वे कहां हैं? अपनी घोषणा के अनुसार मैंने न तो उनकी खबरगीरी ही की, न किसी प्रकार की सेवा सुश्रुषा ही। इस प्रकार पश्चाताप करता हुआ, धन्ना सेठ, गिरि कन्दरा में विराजित आचार्य की सेवा में उपस्थित हुआ और दीनता एवं अनुनय विनय पूर्वक, उनसे प्रार्थना करने लगा, कि मैं हतभाग्य आपको विस्मृत हो गया, इस कारण आपकी सेवा का लाभ न ले सका। आप, मेरा अपराध क्षमा करें, और कृपा करके पारणा करें।

धर्मघोष आचार्य, सेठ के पड़ाव पर भिक्षा लेने के लिये पधारे। उस समय, दान देने के लिये धन्ना सेठ के परिणाम इतने उच्च हुए, कि देवताओं को भी आश्चर्य हुआ। सेठके परिणामों

की परीक्षा करने के लिये, देवताओं ने, मुनि की दृष्टि बांध दी। मुनि तो अपने पात्र को देख नहीं सकते थे, इस कारण सेठ का बहराया हुआ घी, पात्र भर जाने से बाहर बहने लगा। फिर भी सेठ घी डालता ही रहा। परिणामों की उच्चता के कारण, वह यही समझता रहा, कि मेरा बहराया हुआ घृत तो, पात्र में ही जा रहा है। सेठ के दृढ़ परिणामों को देख कर, देवताओं ने, अपनी लीला समेट ली और दान का महात्म्य बताने के लिए, वसुधारादि पांच द्रव्य प्रकट किए।

इस उत्तम दान के प्रभाव से, धन्ना सेठ ने, तीर्थङ्कर नाम गोत्र के योग्य पुण्य सम्पादन किया। पश्चात्, सुख-पूर्वक अपनी शेष आयु समाप्त करके इस भव को त्याग, उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिया ❀ हुआ।

उत्तर कुरु क्षेत्र भोग भूमि है। वहां के मनुष्यों (युगल्यों) की अवगाहना, तीन गाऊ [कोस] की होती है और तीन पल्योपम की आयु होती है। दस प्रकार के कल्पवृक्ष, उनकी इच्छा की पूर्ति करते हैं। उन्हें, तीन दिन में आहार की इच्छा होती है। वे मनुष्य, सरल-परिणामी, अल्प-कषायी तथा अल्प-विषयी होते हैं और सदा प्रसन्नचित्त एवं महा-सुखी रहते हैं। वे लोग,

❀ युगलिया उन मनुष्यों का नाम है जो भोग भूमि में, एक पुत्र और एक कन्या, साथ ही उत्पन्न होते हैं।

आयु भर में, केवल एक बार युगुल सन्तान (एक ही साथ एक पुत्र और पुत्री) उत्पन्न करते हैं, और वह भी, आयु के छः मास शेष रहने पर। उन्हें, अपनी सन्तान का पालन पोषण, केवल ४९ दिन तक करना होता है। पश्चात् वे युगुल (पुत्र पुत्री) युवक-युवती, पति पत्नी के रूप में स्वतन्त्रता से रहने लगते हैं।

प्रकृति की विशुद्धता के कारण, वे युगुलिये, अपनी आयु समाप्त करके, देव गति में ही जाते हैं। धन्ना सेठ का जीव भी, युगुल्या का भव त्याग कर देवलोक में देवता हुआ।

इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में, गान्धार नामक देश था। वहाँ के राजा का नाम, शतबल था। शतबल के, चन्द्रकान्ता नाम की रानी थी। देव भव धारी धन्ना सेठ का जीव, देवताओं के दिव्य भोगों को भोगकर, आयुष्य पूर्ण होने पर, राजा शतबल की रानी चन्द्रकान्ता की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। यहाँ उसका नाम महाबल रक्खा गया। महाबल, सब विद्याओं एवं कलाओं में पारगत हुआ। महाबल के युवक होने पर, राजा शतबल ने, उसके साथ अनेक राजकन्या विवाह दीं। पश्चात्, समय देखकर, शतबल ने, राज भार महाबल को सौंप दिया और स्वयं, संयम में प्रव्रजित हो गया। बहुत काल तक संयम की आराधना और अनेक प्रकार के तप करके, शतबल, स्वर्गवासी हुआ।

राजा महाबल, नीति पूर्वक राज्य करने लगा। महाबल के

प्रधानत चार मत्री थे, जिनके नाम स्वयबुद्ध, सभिन्नमति, शतमति और महामति थे । इन चारों मन्त्रियों में से,स्वयबुद्ध तो सम्यक्त्वधारी एव धर्मपरायण था और शेष तीन मत्री, मिथ्यात्वी थे । तीनों मिथ्यात्वी मत्री तो, राजा महाबल को ससार में ही फँसाये रखने का चेष्टा करते रहते थे, लेकिन स्वयबुद्ध मत्री, समय समय पर राजा को धर्मोपदेश द्वारा, ससार से निकलने के लिए सचेत करता रहता था। महाराजा महाबल, भावी तीर्थंकर था, इसलिए उस स्वयबुद्ध मत्री की बात पसन्द आना, स्वाभाविक ही था । एक दिन राजा महाबल, अपनी आयु समाप्ति के सन्निकट आन पहुँची है यह जानकर, स्वयबुद्ध मत्री से कहने लगा, कि मेरा हितचिन्तक तू ही है । तेरा हृदय, मेरी भलाई के लिए सदा चिन्तित रहा करता है । मैं तो ससारिक विषयों में ही फँसा रहता, लेकिन तूने, मुझे मोह-निद्रा से जागृत किया है । अब तू यह बता, कि मैं थोड़े ही समय में किस प्रकार आत्म-कल्याण करूँ ? क्योंकि मेरी आयु बहुत कम शेष है ।

महाबल के कथन के उत्तर में, स्वयबुद्ध मन्त्री कहने लगा, महाराज, आप घबराइये नहीं, न खेद ही कीजिये । सच्चे हृदय से, थोड़े समय तक आराधा हुआ धर्म भी, कल्याण के लिए पर्याप्त हो सकता है । आप राज-पाट त्याग कर, दीक्षा धारण करलें, तो इस थोड़े समय में भी, आत्मा का कल्याण कर सकते हैं ।

महाराजा महाबल ने, स्वयबुद्ध मन्त्री की बात स्वीकार करके, राज पाट त्याग, दीक्षा लेली और महाबल ने, दीक्षा लेने के दिन से ही अनशन कर दिया। बाइस दिन तक अनशन करने के पश्चात, शरीर त्याग, द्वितीय कल्प (ईशान्य देवलोक) मे ललिताग देव हुआ। ललिताग देव की, स्वय प्रभा नाम्नी प्रधान देवी थी।

उधर महाबल की मृत्यु का हाल जान कर, स्वयबुद्ध मन्त्री को भी ससार से वैराग्य हो गया। उसने भी, गृह ससार त्याग, दीक्षा लेली, और सयम की निरतिचार आराधना करके, समय पर शरीर त्याग, द्वितीय कल्प मे सामानिक देव हुआ। देव होने के पश्चात भी, स्वयबुद्ध, अपने पूर्व स्वामी महाबल–इस समय के ललिताग देव–का हितचिंतक ही रहा, और स्वयप्रभादेवी के विरह से पीडित ललितागदेव को, समझा बुझा कर धर्म पर दृढ किया।

इसी जम्बू द्वीप की पुष्कलावती विजय मे स्थित, लोहार्गल नगर के राजा का नाम स्वर्णजघ था। उसके, लक्ष्मीदेवी नाम की रानी थी। ईशान्य देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, ललिताग देव ने, इस लक्ष्मीदेवी रानी की कुक्षि से जन्म लिया। यहा उसका नाम, वज्रजघ रक्खा गया। उधर अपने पति ललिताग देव के विरह से, स्वयप्रभा देवी, पीडा पाने लगी। अन्त मे स्वयप्रभा देवी भी, देवलोक का आयुष्य समाप्त होने पर, इसी पुष्कलावती विजय स्थित पुण्डरीकिणी नगरी के राजा वज्रसेन की पुत्री

हुई। यहाँ स्वयंप्रभा देवी का नाम श्रीमती हुआ।

श्रीमती युवती हुई। एक दिन वह अपने महल की छत पर बैठी थी, इतने में ही उस ओर से, देवों के विमान निकले। उन देव विमानों को देख कर श्रीमती को, जाति स्मृति ज्ञान (यह, मति ज्ञान का पर्यायवाची भेद है) हुआ। अपने पूर्व भव का वृत्तान्त जानकर, ललितांग देव का स्मरण आने से, श्रीमती ने मौन धारण कर लिया। उसकी सहेलियों ने, उसका मौन छुड़वाने की बहुत चेष्टा की, लेकिन सब चेष्टाएँ निष्फल हुई। अन्तत, श्रीमती की एक पण्डिता नाम्नी चतुर सखी ने, एकान्त में श्रीमती से उसके मौन का कारण पूछा। श्रीमती ने, पण्डिता से कहा, कि जब तक मुझे अपने पूर्व भव का पति न मिलेगा, मैं किसी से न बोलूंगी।

श्रीमती की सहायता से, पंडिता ने एक पट पर, दूसरे देव लोक एवम् ललितांग देव के विमान आदि का चित्र बनाया और चित्र में कुछ त्रुटि रहने देकर, चित्रपट को राज-पथ पर टांग दिया। उस चित्रपट के देखने से, कुमार वज्रजंघ को भी जाति-स्मृति ज्ञान हुआ। उसने, चित्रपट में रही हुई कमी मिटादी। परिणाम-स्वरूप वज्रजंघ और श्रीमती का आपस में विवाह हो गया।

वज्रजंघ और श्रीमती, बहुत काल तक सांसारिक भोग भोगते रहे। पश्चात, शरीर त्याग कर, सरल परिणामों के

कारण, उत्तर कुरुक्षेत्र में युगुल्या हुए। वहाँ युगुलिक सुख भोग कर, दोनों अपना आयुष्य समाप्त करके, सौधर्म देवलोक में गये।

जम्बू द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में, क्षितिप्रतिष्ठित नाम का एक नगर था। उस नगर में, सुविधि नाम का एक वैद्य रहता था। वज्रजंघ का जीव, सौधर्म देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, इस सुविधि वैद्य के यहाँ पुत्र रूप में जन्मा, जिसका नाम जीवानन्द रक्खा गया। जीवानन्द वैद्यक में बहुत निपुण हुआ उधर श्रीमती का जीव भी, सौधर्म देवलोक का आयुष्य भोगकर इसी क्षितिप्रतिष्ठित नगर में, ईश्वरदत्त सेठ के यहा पुत्ररूप में जन्मा

जीवानन्द वैद्य की, महिधर राजकुमार, एक प्रधान का पुत्र एक सेठ का पुत्र, और दो अन्य साहूकारों के पुत्रों से बड़ी मैत्री थी। एक दिन, जीवानन्द वैद्य के पाँचों मित्र, जीवानन्द वैद्य के यहाँ बैठे थे। उसी समय, वहाँ पर एक तपोधन, किन्तु व्याधि पीडित मुनि पधारे। जीवानन्द वैद्य, अपने व्यवसाय में लग हुआ था, इसलिए उसने इन मुनि की ओर देखा भी नहीं। यह देखकर, महिधर राजकुमार ने जीवानन्द वैद्य से कहा, मित्र! तुम बड़े स्वार्थी जान पड़ते हो। जहाँ निःस्वार्थ सेवा का अवसर होता है, उस ओर तुम ध्यान भी नहीं देते। योग्यता होते हुए भी परोपकार रहित जीवन से क्या लाभ! महिधर की बात के उत्तर में, जीवानन्द ने कहा कि—आप ठीक ही कहते हैं, लेकिन यह

बताइए, कि मेरे योग्य ऐसी कौनसी सेवा है ? महिधर ने, मुनि की ओर सकेत करते हुए जीवानन्द से कहा, कि य मुनि, तपस्वी एव शरीर की ओर से भी उपेक्षा रखने वाले जान पड़ते हैं । इनका शरार रोगी है, अत ऐसे महात्मा के शरीर का रोग मिटा कर, महान् लाभ लीजिये । मुनि के शरीर को देखकर, जीवानन्द वैद्य ने महिधर से कहा, कि इन महात्मा के शरीर में, कुपथ्य सेवन से रोग हुआ है । इस राग को मिटाने के लिए लक्षपाक तेल तो मेरे पास है, लेकिन गौशीर्ष चन्दन और रत्नकम्बल मेरे पास नहीं हैं । यदि आप ये दोनों वस्तु ले आवें, तो मुनि की चिकित्सा हो सकती है और इनका शरीर, स्वस्थ बन सकता है ।

जीवानन्द वैद्य का उत्तर सुनकर, पाँचों मित्र, गौशीर्ष चन्दन और रत्नकम्बल लाने के लिए, बाजार म गये । बाजार में, जिस व्यापारी के यहाँ य दोनों वस्तुएँ थीं, उसने कहा कि इन दोनों का मूल्य तो दो लाख स्वर्ण मुद्रा है, लेकिन यह बताइए कि आप ये दोनों वस्तु, किस कार्य के लिए ले रहे हैं ? पाँचों मित्रों ने, व्यापारी को उत्तर दिया, कि हम इन वस्तुओं की एक महात्मा के शरार की चिकित्सा के लिए आवश्यकता है । व्यापारी ने, इन मित्रों को धन्यवाद देते हुए, दोनों वस्तुएँ दे दीं, और कहा, कि मैं इनका मूल्य न लूँगा, आप इन्हें ले जाकर मुनि के शरीर की

पाचों मित्र, दोनों वस्तु लेकर, अपने छठे मित्र जीवानन्द के पास आये। छहों मित्रों ने, मुनि के रुग्ण शरीर में, लक्षपाक तेल का मर्दन करके, रत्नकम्बल द्वारा रोग-कृमि निकाल, गोशीर्ष चन्दन के लेप, से शरीर को निरोग बना दिया।

अनुक्रम से छहों मित्र, संसार से विरक्त हो गये। छहों ने, संयम स्वीकार कर लिया और अनेक प्रकार का तप करके, आयुष्य पूर्ण होने पर, बारहवें देवलोक में, महर्द्धिक देव हुए।

इसी जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में, पुण्डरीकिनी नाम की एक नगरी थी। वहाँ वज्रसेन नाम के महाराजा राज्य करते थे, जो तीर्थंकर थे। वज्रसेन महाराजा के, धारिणी नाम की रानी थी। जीवानन्द वैद्य का जीव, बारहवें देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, धारिणी रानी के गर्भ में आया। धारिणी रानी ने, उसी रात में, चौदह महास्वप्न देखे। महाराजा वज्रसेन ने, धारिणी रानी से महास्वप्न सुनकर, यह फल बताया, कि तुम चक्रवर्ती पुत्र प्रसव कराेगी। समय पाकर रानी ने, सर्व लक्षण-सम्पन्न पुत्र प्रसव किया, जिसका नाम, वज्रनाभ हुआ। जीवानन्द वैद्य का जीव तो वज्रनाभ हुआ, और जीवानन्द के शेष पाँच मित्र वज्रनाभ के छोटे भाई हुए।

दीक्षा-काल समीप जानकर, लोकान्तिक देवों ने, महाराजा वज्रसेन से, तीर्थ प्रवर्तन के लिए प्रार्थना की। महाराजा वज्रसेन

ने, अपने पुत्र वज्रनाभ को राज्यारूढ किया और स्वय न दीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर मुनि वज्रसेन ने, कठिन तप द्वारा, घातक कर्म क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

एक दिन, महाराजा वज्रनाभ के सम्मुख आकर शस्त्रागार-रक्षक ने, आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न होने की बधाई दी। इतने ही में दूसरी ओर से, वज्रसेन तीर्थंकर को केवलज्ञान हुआ है, यह बधाई आई। इसी समय वज्रनाभ को, अपने यहाँ पुत्र-जन्म होने की भी बधाई मिली। चक्रवर्ती वज्रनाभ ने, सर्व प्रथम, तीर्थंकर के केवलज्ञान की महिमा की, अर्थात् वन्दन, वाणी श्रवण, और सम्यक्त्व की प्राप्ति की और पश्चात्, चक्ररत्न एव पुत्र उत्पन्न होने के महोत्सव किये।

चक्रवर्ती वज्रनाभ ने, चौदह रत्न की सम्पत्ति से छः खण्ड पृथ्वी का विजय किया और राजाओं एव देवों को वश करके, वे दीर्घकाल तक चक्रवर्ती पद का उपभोग करते रहे। समय पाकर वज्रनाभ को, ससार से वैराग्य हुआ और वे, वज्रसेन तीर्थंकर के समीप दीक्षा लेकर, अनेक प्रकार के तप करने लगे। अन्तत तीर्थङ्कर पद के योग्य बीस बोल की आराधना करके, उत्कृष्ट रस-द्वारा तीर्थङ्कर नाम उपार्जन किया और शरीर त्याग कर, सर्वार्थसिद्ध महाविमान में, तैंतीस सागर की स्थिति वाले सर्वोत्कृष्ट देव हुए।

अन्तिम भव

इस अवसर्पिणी काल के, प्रथम तथा द्वितीय आरे बीत चुके थे। तृतीय आरे का भी बहुत भाग, व्यतीत हो चुका था, केवल चौरासी लाख पूर्व से कुछ अधिक काल शेष था। जम्बूद्वीप के इस भरत क्षेत्र में, उस समय भी युगुल्या धर्म कुछ कुछ मौजूद था। नाभिकुलकर नाम के युगुल्यों के राजा थे, जिनकी रानी का नाम मरुदेवी था। वज्रनाभ का जीव, सर्वार्थसिद्ध महा विमान का आयुष्य भोगकर, भगवती मरुदेवी के गर्भ में आया। महारानी मरुदेवा ने, स्वप्न मे, वृषभ, हाथी, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्रमंडल, सूर्यमण्डल, महाध्वज, कुंभकलश, पद्मसरोवर क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि, और निर्धूम अग्नि को देखा। इन चौदह महास्वप्न को देखकर, महारानी मरुदेवी, जाग उठीं और बहुत हर्षित हुईं। वे, शीघ्रही अपने पति महाराजा नाभि के समीप गईं और उन्हें, देखे हुए महास्वप्न सुनाये। महारानी मरुदेवी के महास्वप्न को सुनकर, महाराजा नाभि, बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मरुदेवी से कहा—भद्रे, इन महास्वप्न के प्रभाव से, तुम एक महा भाग्यवान पुत्र को जन्म दोगी। पति की इस बात को, महारानी ने सादर शीश चढ़ाया और हर्षित होती हुई, अपने स्थान पर लौट आईं। भगवान श्री ऋषभदेव का यह प्रथम गर्भ

कल्याण, आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी का हुआ। इस कल्याण का, इन्द्र और देवताओं ने भी महोत्सव मनाया।

महारानी मरुदेवी, यत्न-पूर्वक गर्भ का पोषण करती रही। नौमास साढ़े सात रात व्यतीत होने पर, वसन्त ऋतु में, चैत्र कृष्णा अष्टमी की रात को उत्तराषाढा नक्षत्र में, सर्व उच्चयोग प्राप्त होने पर महारानी मरुदेवी ने, त्रिलोक-पूज्य पुत्र को प्रसव किया। उस समय, ऊर्ध्व मध्य और अध लोक उद्योतमय हुआ और क्षण भर के लिए, नारकीय जीव भी आनन्दित हुए।

जिस समय तीर्थंकर भगवान का जन्म होता है, इन्द्रों के आसन, कम्पित होने लगते हैं। वे, अवधिज्ञानादि से जान जाते हैं, कि तीर्थंकर भगवान का जन्म हो चुका, अतः भगवान का जन्म कल्याण महोत्सव करने को, उपस्थित होते हैं। भगवान ऋषभदेव के जन्म समय भी, ऐसा ही हुआ। इसलिए, सर्व प्रथम छप्पन दिक्-कुमारियां, माता मरुदेवी की सेवा में उपस्थित हुईं, और उन्होंने जन्म-स्थान व उसके आस-पास की भूमि को शुद्ध करके, प्रसूति कर्म योग्य सब प्रबन्ध किया। भगवान का जन्म होजाने पर, एक एक करके त्रैसठ इन्द्र एवं असंख्य देव देवी, भगवान का जन्मकल्याण महोत्सव मनाने के लिए, मेरु पर्वत पर एकत्रित हुए। पश्चात्, सौधर्मपति शक्रेन्द्र महाराज ने महारानी मरुदेवी के भवन में पधार कर, भगवान तथा माता को प्रणाम किया और

अवस्वापिनी निद्रा द्वारा, महारानी मरुदेवी को शान्त करके, भगवान को, जन्म कल्याणार्थ मेरु पर्वत पर ले गये। वहाँ पर, क्रमानुसार सभी इन्द्रों ने, भगवान को स्नान करा, वस्त्राभूषण पहनाये और उनकी पूजा प्रार्थना की। एकत्रित देव-देवा न भी, गान वाद्य द्वारा, भगवान् के जन्म कल्याण का मंगल मनाया। यह हो चुकने पर, दक्षिणार्द्ध लोक के स्वामी शक्रेन्द्र महाराज, भगवान पर छत्र चामर आदि करके, जयध्वनि से गगन-मण्डल को गुंजाते हुए, भगवान को, महारानी मरुदेवी के पास लाये। भगवान को, उनकी माता के पास पधरा कर, माता की अवस्वापिनी निद्राहरण करली और भगवान, एवं माता मरुदेवी को नमस्कार करके शक्रेन्द्र महाराज, सब देव देवी सहित, नन्दीश्वर द्वीप में गये। वहां सबने, अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। इस प्रकार ऋषभ भगवान का जन्म कल्याण मनाकर, सब इन्द्र एवं देव-देवी अपने अपने स्थान को चले गये।

भगवान ऋषभदेव, अंगुष्ठामृत का पान करते हुए * दिन प्रतिदिन, द्वितीया के चन्द्रवत् बढ़ने लगे। युवावस्था प्राप्त होने पर और मान उन्मान प्रमाण युक्त पाँच सौ धनुष ऊँचा, सर्वांग

---

* तीर्थङ्कर भगवान माता का स्तन-पान नहीं करते किन्तु सम्मिलित अवस्था अंगुष्ठामृत का ही पान करते हैं। तीर्थङ्कर भगवानकी यह भी एक विशेषता है।

सुन्दर, कंचन वर्णीय एवं देदीप्यमान सुशोभित शरीर हो जाने पर, तत्सामयिक प्रथा के अनुसार, भगवान का, देवी सुमंगला के साथ संसार-व्यवहार प्रारम्भ हुआ।

भोगभूमि के युगल्या स्त्री पुरुष, समायुषी होते थे और दम्पति साथ ही जन्मते, तथा मरते थे। न कोई अकेला जन्मता ही था, न मरता ही था। इस कारण उस समय तक, विवाह-पद्धति का जन्म ही नहीं हुआ था। पुत्र-कन्या एक ही साथ जन्मा करते थे, और युवावस्था होने पर, वे ही दोनों पति-पत्नि बन जाते थे। लेकिन अवसर्पिणी काल के प्रभाव से, तीसरे आरे के अन्तिम भाग में, यह नियम अस्तव्यस्त हो चला और परिस्थिति में विषमता आने लगी। इस विषम परिस्थिति के कारण, एक पुत्र-कन्या के जोड़े में से, पुत्र, कुमारावस्था में ही शरीर त्याग गया। इस शरीर त्यागनेवाले के साथ जन्मी हुई कुँवारी कन्या अकेली एवं असहाया रह गई। इस असहाया कुँवरी को, महाराजा नाभि ने शरण दी, और वे उसका पालन पोषण करने लगे। जब वह कन्या युवती हुई, तब महाराजा नाभि विचार करने लगे, कि अब इस कन्या की क्या व्यवस्था करनी चाहिए? अन्तत सबकी यही सम्मति हुई, कि यह कन्या—रत्न श्री ऋषभकुमार को सौंप दिया जावे। इस प्रकार का निश्चय होजाने पर, स्वयं इन्द्र ने, विवाह महोत्सव किया और देवियों

तथा इन्द्रानियों ने मंगलचार करके विधि-पूर्वक, कुमार ऋषभ के साथ उस कन्या का विवाह कर दिया। इस प्रकार इस भरत क्षेत्र में यह सर्व प्रथम विवाह हुआ और इसी विवाह से विवाह पद्धति का जन्म भी हुआ। भगवान् की इन विवाहित किन्तु द्वितीय पत्नी का नाम, देवी सुनन्दा था।

दोनों पत्नियों के साथ भगवान् ऋषभदेव, आनन्द सहित समय बिताने लगे। देवीसुमंगला के उदर से, भरत नाम के पुत्र ब्राह्मी नाम की कन्या तथा ४९ युगुल पुत्र उत्पन्न हुए और देवीसुनन्दा के उदर से, बाहुबल नाम के पुत्र, और सुन्दरी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव के एक सौ पुत्र और दो पुत्रियां हुईं।

इस समय तक, भोगभूमि की व्यवस्था में बहुत ही परिवर्तन हो गया था। मानवी-व्यवस्था के साथ ही, अन्य प्राकृतिक व्यवस्था भी बदल चली थी। पहले, मनुष्यों की आवश्यकताओं को कल्पवृक्ष पूरा किया करते थे, लेकिन अब वे भी फल रहित होने लग थे। कल्पवृक्ष के फल रहित होते ही, मनुष्यों में हाहाकार मच गया। वे, अपनी आवश्यकताओं को लेकर, आपस में ही एक दूसरे से लड़ने लगे। नाभि राजा के पास, चारों ओर से फरियाद पर फरियाद आने लगीं। नाभिराजा भी, इस विषमता से घबरा उठे और पुकार करने के लिए आने

वाले लोगों को भगवान् ऋषभदेव के पास भेजने लगे।

इस समय तक भगवान् ऋषभदेव की आयु, बीस लाख पूर्व की हो चुकी थी। इधर तो नाभि महाराज के भेजे हुए पीड़ित लोग, भगवान की सेवा में उपस्थित हुए और उधर इन्द्रादि देवों ने यह विचार किया, कि अब भगवान् को राजसिंहासन पर आरूढ़ होकर लोकनीति प्रवर्तानी चाहिये। यह विचार कर, इन्द्रादि देव भी भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने भगवान् को राजसिंहासन पर बैठा कर, हर्ष सहित भगवान् का राज्याभिषेक किया उसी समय इन्द्र की आज्ञा से देवताओं ने, बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी एक नगरी का निर्माण किया, और उस नगरी का नाम विनीता रखकर, उसमें जनता को बसाया।

राज सिंहासनारूढ होते ही, सबसे पहले भगवान् ऋषभदेव ने परिस्थिति की विषमता से पीड़ित लोगों का दुःख दूर करने का निश्चय किया। तीर्थंकर भगवान्, माता के गर्भ में ही तीन ज्ञान सहित पधारते हैं। उन मति श्रुति और अवधि नाम के तीन ज्ञान में से, अवधि प्रत्यक्षज्ञान होता है, इससे तीर्थङ्कर भगवान्, प्रत्येक कार्य की विधि से परिचित होते हैं। भगवान् ऋषभदेव भी तीर्थङ्कर थे, और प्रत्येक कार्य की विधि से परिचित थे, इसलिए उन्होंने, जनता को विद्या एवं कला सिखा कर, परावलम्बी से स्वावलम्बी बनाया और लोकनीति का प्रादुर्भाव

करके, अकर्मभूमि को, कर्म भूमि के रूप में परिणित कर दिया। भगवान् ने, यदि जनता को कला-विद्या आदि सिखाकर, उस ओर न लगाया होता, उन्हें भूखों मरने से न बचाया होता, तो मनुष्यों में मनुष्यत्व का ही अभाव होना सम्भव था। 'बुभुक्षितं किं न करोति पापं?' अर्थात भूखा, क्या पाप नहीं करता? इसके अनुसार, उस समय मनुष्य भी, भूख के मारे क्या क्या न करने लगते? इस प्रकार जनता का उपकार करते हुए, भगवान ऋषभदेव ने, त्रैसठ लाख पूर्व राज्य किया। इस राज्यकाल में भगवान ने मनुष्य जीवन की आवश्यकता पूर्ति करने के लिये सब उपायों का आविष्कार करके लोगों को सुखी बना दिया।

त्र्यासी लाख पूर्व की अवस्था होने पर, भगवान् ऋषभदेव ने, विचार किया, मैंने, लौकिक नीति का प्रचार तो किया, लेकिन यदि इसी के साथ धर्म नीति का प्रचार न हुआ, तो मनुष्य, संसार में फँसे रह कर, दुर्गति के ही अधिकारी बनेंगे, संसार-बन्धन से छूटने के उपाय से अनभिज्ञ रहेंगे। इसलिए लोगों को, धर्म से परिचित करना चाहिये। भगवान ने यह विचार किया, इतने में ही, ब्रह्म नाम के पाँचवें देवलोक में रहनेवाले लोकान्तिक देव, भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए और भगवान से, धर्म तीर्थ प्रवर्ताने के लिए प्रार्थना की।※

※ तीर्थङ्कर का दीक्षा काल आने पर, लोकान्तिक देवों के लिए, इस प्रकार की प्रार्थना करना, नियोजित है।

अपने विचार, एवं लोकान्तिक देवों की प्रार्थना के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने, वार्षिक-दान प्रारम्भ किया। वे, उदारचित्त से, एक पहर दिन चढ़ने तक, एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्रा (सोनैया) नित्य दान करने लगे और नियमित रूप से एक वर्ष तक इसी प्रकार दान देते रहे। भगवान् ऋषभदेव के राज्य काल में, अनेक नगर बस चुके थे और राजकार्य व्यवस्था भी हो चुकी थी। इसलिए वार्षिकदान दे चुकने के पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को विनीता नगरी का, तथा शेष निन्यान्वे पुत्रों को भिन्न भिन्न नगरों का राज्य देकर, और माता मरुदेवी से आज्ञा प्राप्त करके, भगवान, चार सहस्र राजा युवराज आदि राजकुल एवं क्षत्रिय कुल के पुरुषों सहित, सुदर्शना पालकी में आरुढ़ हुए और अनेक प्रकार के वाद्य एवं मनुष्य और देवताओं के जयघोष के मध्य, विनीता नगरी के सिद्धार्थ नामक बाग में पधारे। सिद्धार्थ बाग में चैत्र कृष्णा ८ को उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में भगवान ने चारमुष्टि लोच * करके, दीक्षा धारण

---

* दीक्षा लेते समय सब तीर्थङ्कर पंचमुष्टि लोच करते हैं, लेकिन भगवान् ऋषभ से इन्द्र ने प्रार्थना की कि हे प्रभो! शिखा बहुत सुशोभित है इसलिए शिखा रहने दीजिये। भगवान ने इन्द्र की यह प्रार्थना स्वीकार की। कहा जाता है कि उसी समय से लोग, शिखा रखने लगे।

थी। इन्द्रादि देवों ने, भगवान की दीक्षा का दीक्षा-कल्याण मनाया। दीक्षा लेते ही, भगवान को मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान के साथ निकले हुए चार हजार पुरुषों ने भी, उसी समय दीक्षा धारण की।

साथियों सहित दीक्षा धारण करके, भगवान, वन की ओर पधारे। भगवान जब वन की ओर पधारने लगे, तब माता मरुदेवा ने, भगवान से महल में चलने के लिये कहा, लेकिन भगवान ने कोई उत्तर न दिया। तब भगवान के ज्येष्ठ पुत्र भरत महाराज ने, माता मरुदेवी से कहा, कि हे मातेश्वरी! प्रभु अब घर न पधारेंगे, वे संसार से विरक्त हो गए हैं। यह बात सुन माता मरुदेवी, बड़े असमंजस में पड़ गईं। अन्त में, इन्द्र महाराज ने, माता मरुदेवा आदि सब को समझा बुझा कर घर भेजा और भगवान्, वन की ओर विहार कर गये।

इस अवसर्पिणी काल में, भगवान् ऋषभदेव, सर्व प्रथम मुनि हुए थे। इन से पूर्व, संयम में कोई प्रवर्जित नहीं हुआ था, इस कारण जनता, मुनिधर्म एवम् दान विधि से अनभिज्ञ थी। भगवान, आहार की भिक्षा के लिये जब लोगों के यहां पधारते, तब लोग, हर्षित होकर अनेक प्रकार के रत्नाभूषण, हाथी, घोड़ा कन्या आदि लेने के लिये भगवान को आमन्त्रित करते, लेकिन शुद्ध और एषणिक अहार-पानी के लिये, कोई प्रार्थना तक

न करता। आहार पानी न मिलने के कारण, भगवान के चार हजार साथी मुनि, व्याकुल होकर भगवान से प्रार्थना करने लगे, लेकिन भगवान मौन रहते थे। इस कारण व्याकुल हो कर वे साथी मुनि, अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करने लग गये।

भगवान को निराहार रहते, एक वर्ष बीत गया। विचरते विचरते वे, हस्तिनापुर पधारे। हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ के पुत्र श्रेयांशकुमार —जो भगवान ऋषभदेव के पौत्रों में से थे— को तथा हस्तिनापुर के लोगों को, भगवान के पधारने के पूर्व—यह स्वप्न हुआ था, कि 'सूखते हुए कल्पवृक्ष को श्रेयांश ने सींचा'। यहाँ के लोग, इस स्वप्न पर विचार कर हो रहे थे, इतने ही में, भगवान हस्तिनापुर में पधारे। श्रेयांशकुमार को, भगवान ऋषभदेव के दर्शन करते ही, जाति स्मृति ज्ञान हुआ। अपने पूर्वभव को जान कर श्रेयांशकुमार ने, सर्व प्रथम भगवान को आहार के लिये आमन्त्रित किया। भगवान को लेकर श्रेयांशकुमार पाक-गृह में आये, परंतु वहाँ निर्दोष प्रासुक आहार नहीं था। केवल भेंट में आए हुए इक्षु रस के घड़े रखे थे। श्रेयांशकुमार की प्रार्थना पर भगवान ने अपने करपात्र में इक्षु-रस लेकर वैशाख शुक्ल तृतिया को एक वर्ष के तप का पारणा किया। तभी से वैशाख शुक्ल तृतिया का नाम, अक्षय-तृतिया हुआ। श्रेयांसकुमार के इस दान की महिमा बताने के लिये, इन्द्रादिक

देवों ने, पाच दिव्य प्रकट करके, लोगो को दान का महात्म्य बताया। भगवान का पारणा हुआ जान कर लोगों को बडा हर्ष हुआ। उसी समय से लोग, मुनि को दान देने की विधि को समझने लगे।

भगवान, हस्तिनापुर नगर से विहार कर गये और जनपद देश-में विचरने लगे। वे, एक हजार वर्ष तक, ध्यान मौन और तपादि द्वारा कर्मों का नाश करते हुए, छद्मस्थावस्था में विचरते रहे। भगवान विचरते-विचरते पुरिमताल नगर के शकटमुख वन में पधारे। उस वन में अष्टमतप करके भगवान, वट वृक्ष के नीचे, कायोत्सर्ग में लीन हुए। शुभ और शुद्ध अध्यवसाय की वृद्धि से, शुक्ल-ध्यान में प्रवेश करके, भगवान ने, मोहकर्म की कषाय तथा नो कषायी प्रकृतियों का क्षय किया और क्रमश आठवें, से नववें दसवें तथा बारहवें गुणस्थान में पहुँच कर भगवान ने, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय, इन तीनों कर्म को एक साथ युगपत क्षय करके, फाल्गुन कृष्ण एकादशी को—जब चन्द्र, उत्तराषाढा नक्षत्र में था उस समय— अनन्त, पूर्ण, निराबाध और निरावरण केवलज्ञान तथा केवलदर्शन, प्राप्त किया।

भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है यह जान कर इन्द्र और देवताओं ने, केवलज्ञान की महिमा की।

उन्होंने समवशरण की रचना की, जिसमें देव-देवी, मानव मानवी, और तिर्यंच तिर्यंचिनी आदि बारह प्रकार की परिषद्, प्रभु का उपदेशामृत पान करने के लिये एकत्रित हुई।

जब से भगवान् दीक्षा लेकर विनीता नगरी से विहार कर गये, तब से भगवान् की कुशल के समाचार माता मरुदेवी को नहीं मिले थे। इस कारण माता मरुदेवी, चिन्तातुर हो रही थीं। जिस समय, माता मरुदेवी भगवान् के लिए चिन्ता कर रही थीं। उसी समय, उनके पौत्र भरत महाराज, अपनी पितामही के चरण-वन्दन को गये। पितामही मरुदेवी को चिन्तित देखकर, भरत महाराज ने उनसे पूछा-हे माता, आप चिन्तित क्यों ? पौत्र के प्रश्न के उत्तर में, माता मरुदेवी ने, चिन्ता का कारण कह सुनाया। भरत महाराज ने प्रार्थना की—हे माता, पिताजी, कर्म-शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए, तपाराधन कर रहे हैं। उन्हें, शीघ्र ही केवलज्ञान होगा। उस समय आप, उन का अपूर्व सम्पत्ति का अवलोकन करके, अपनी कोख को धन्य मानेंगी।

भरत महाराज, यह प्रार्थना कर ही चुके थे, कि इतने में एक पुरुष ने, भरत महाराज को, भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न होने की बधाई दी। इस बधाई के साथ ही, भरत महाराज को, दूसरे पुरुष ने आयुधशाला में महातेजस्वी चक्ररत्न प्रकट होने की बधाई दी, और तीसरे पुरुष ने, पुत्र-जन्म की बधाई

दी। सातों बधाइयाँ मिल जाने पर, भरत महाराज ने, सब से पहले भगवान को वन्दन करने के लिये जाने की तैयारी कराई और माता मरुदेवी से भी, पधारने की प्रार्थना की। सपरिवार भरत महाराज ने, भगवान को वन्दन करने के लिय प्रस्थान किया। गजारूढ़ माता मरुदेवी भी, साथ पधारीं।

भगवान क समवशरण के समीप पहुँच कर, और देवों का आगमन, एवम् केवलज्ञान के साथ प्रकट होने वाले अष्ट महा प्रतिहार्यादि विभूति देख कर, माता मरुदेवी, साश्चर्य बहुत प्रसन्न हुईं। उन्हें, भगवान के समवशरण से ऐसा हर्ष हुआ, कि हाथी पर बैठे ही बैठे उन्होंने, अध्यवसाय की शुद्धि, तथा अपूर्व करण एवम् शुक्ल ध्यान के योग से, घातक कर्म क्षय करके अनन्त चतुष्टय रूप सिद्धि प्राप्त करली। इतना ही नहीं किंतु आयुष्य का अन्त आ जाने से, हाथी पर बैठी बैठी ही सब कर्मों का नाश कर, सिद्ध गति को प्राप्त हुईं।

माता मरुदवी तो, हाथी पर बैठी ही बैठी सिद्धि गति म पधार गइ और भरत महाराज, भगवान को विनय पूर्वक नमस्कार करके, सेवा म बैठे। उस समय तीर्थनाथ भगवान ऋषभ स्वामी ने, सर्व भाषाओं का स्पर्श करने वाली, पैंतीस वचनातिशय युक्त अमोघवाणी का प्रकाश किया, जिससे भव्य जीवों को अपूर्व शान्ति मिली। भगवान की अमोघवाणी से बोध पाकर, भरत

महाराज के पुत्र ऋषभसेन ने पांच सौ पुत्रों एव सात सौ पौत्रों के साथ और सती ब्राह्मी ने अनेक स्त्रियों के साथ, भगवान से मुनि-धर्म स्वीकार किया। भरत महाराज के साथ आये हुए लोगों में से शेष ने, श्रावक व्रत लिये और भरत महाराज ने भी सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान ऋषभदेव के ८४ गणधर ८४००० मुनि ३००००० साध्वी, ३०५००० श्रावक और ५५४००० श्राविका हुई। केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात्, वे, एक हजार वर्ष न्यून एक लाख पूर्व तक जनपद में विचरते और भव्य जीवों का उद्धार करते रहे। निर्वाणकाल समीप जान कर, भगवान ऋषभदेव, दस हजार, मुनियों के साथ अष्टापद पर्वत पर पधारे। वहाँ, सबने अनशन किया। भगवान और उनके साथी सतों का अनशन, छः दिन तक चलता रहा। पश्चात् माघ कृष्णा १३ को चन्द्र का योग अभीच नक्षत्र में आने पर भगवान ने, पर्यंकासन पर शुक्लध्यान के चतुर्थ पाद का अवलम्बन लिया, तथा मन-वचन काय के योग को रोक कर, चार अघातिक कर्मों का नाश किया और सिद्ध गति को प्राप्त हुए, यानी मोक्ष पधारे। भगवान मोक्ष पधारे तब इस अवसर्पिणी काल का तीसरा आरा समाप्त होने में, तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष थे।

जिस समय भगवान ऋषभदेव मोक्ष पधारे, उसी समय में

अन्य १०७ पुरुष भी सिद्ध हुए। इस बात की गणना, उन्हीं दस आश्चर्य की बातों म है, जो इस अवसर्पिणी काल मे हुई हैं।* भगवान् के साथ अनशन करने वाले दस हजार मुनि भी, उसी नक्षत्र में मोक्ष पधारे, जिस नक्षत्र म भगवान मोक्ष पधारे थे। इनके शरीर का अन्तिम संस्कार, इन्द्र तथा देवताओं ने किया। पश्चात् सब देवी देव ने, नन्दीश्वर द्वीप मे जाकर, भगवान का निर्वाण-कल्याण मनाया और अष्टाह्निका महोत्सव करके, अपने अपने स्थान को गये।

इति श्री ऋषभ चरित्र समाप्त

प्रश्न—

१—आप भगवान् ऋषभदेव के कितने पूर्व-भव का चरित्र जानते हैं ?

२—भगवान ऋषभदेव ने, तीर्थङ्कर नाम गोत्र के योग्य पुण्य का सम्पादन किस भव में और किस कार्य के द्वारा किया था ?

३—भोगभूमि का जीवन अच्छा है, या कर्म भूमि का ?

---

* उत्कृष्ट अवगाहनावाले एक ही समय में इतने अधिक नहीं होते, पर यहाँ १०८ हुए यही आश्चर्य माना जाता है।

४—जीवानन्द वैद्य का भव पाने के पश्चात, भगवान ने और कितने भव किये ?

५—इस चरित्र की कौन कौन सी बात ग्रहण करने योग्य है ?

६—चक्ररत्न और पुत्र उत्पन्न होने का उत्सव पहले न करके, वज्रनाभ ने, वज्रसेन तीर्थङ्कर को केवलज्ञान उत्पन्न होने का उत्सव पहले क्यों किया ?

७—भगवान ऋषभदेव को, सर्वप्रथम मुनि और तीर्थङ्कर क्यों माना ? जब कि इसी चरित्र में दूसरे मुनियों एवं तीर्थङ्कर का होना आप पढ़ चुके हैं।

भगवान श्री अजितनाथ

प्रार्थना

श्लोक—

सद्युक्ति मुक्ति तरुणी निरत निरस्त,
रामानवस्मरपर जितशत्रु जातम् ।
अर्जितवन विजयाङ्गज मात्त धर्म,
रा मानव स्मर पर जितशत्रु जातम् ॥

भावार्थ—भगवान अजितनाथ, जितशत्रु तथा विजया माता के अंगज को एकाग्र मन से स्मरण करो। कैसे हैं वे प्रभु ? उत्तमयुक्ति एवं मुक्ति रूप वनिता में रत और काम तथा कान्ता रूपी अरि को परास्त करनेवाले विजयी होकर—मुक्ति के सर्वस्व (मोक्ष) को जिन्होंने प्राप्त किया है।

पूर्वभव

जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र म, 'वत्स्य' नाम का विजय (खण्ड) था। उस विजय म, सुसीमा नाम का एक रमणाय नगरी थी। वहा का राजा विमलवाहन, अनेक गुण सयुक्त और प्रजा-पालक था।

राजा विमलवाहन को, एक समय बैठे-बैठे यह विचार हुआ, कि 'ससार के समस्त पदार्थ क्षणिक और अस्थायी हैं, फिर भी प्राणी, मोह के वश होकर अपन आप को भूल जाता है और ससार के पदार्था म ऐसा फँस जाता है, कि उसे, [illegible] हिताहित का ध्यान ही नहीं रहता। जा मनुष्य शरार, [illegible] पुण्योदय से प्राप्त है, उस भोग विलास और [illegible] के ममत्व मे ही खो देता है, सच्चे हितकारी धम [illegible] नहीं करता। अन्त में, खाली हाथ परलोक [illegible] जहा, अनेक यन्त्रणा (पीड़ा) सहता है। [illegible] शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हुई हैं [illegible] द्वारा आत्म कल्याण करलूँ।'

राजा विमलवाहन, इस [illegible] 'इतन म हा यह सूचना मिली, कि [illegible] अरिंदम नाम के सूरि पधारे हैं [illegible]

राजा विमलवाहन बहुत हर्षित हुआ और सपरिवार, सूरिजी को वन्दन करने चला। उद्यान के समीप पहुँचकर, विमलवाहन, हाथी पर से उतर पड़ा और मुनि की सेवा में उपस्थित होकर, उन्हें विधि सहित वन्दना की। वन्दना कर चुकने के पश्चात, राजा, मुनि से प्रार्थना करने लगा—हे प्रभो! संसार रूपी विषवृक्ष के क्लेश दुःख रूपी फलों का दुष्परिणाम भोगकर भी, संसार के जीव, संसार से विरक्त नहीं होते, ऐसा मैं देख रहा हूँ। इसलिए मैं, यह जानने का इच्छुक हूँ, कि आपको संसार से क्यों और कैसे विरक्ति हुई?'

राजा विमलवाहन के प्रश्न के उत्तर में, आचार्य अरिंदम कहने लगे—राजन्, विरक्तात्मा के लिए, संसार की समस्त बातें वैराग्य उत्पन्न करनेवाली ही हैं। हाँ, संसार की समस्त बातों में से कोई कोई बात, वैराग्य का हेतु अवश्य बन जाती है। यही बात मेरे लिए भी हुई। मैं जब गृहस्थाश्रम में था, तब चतुरंगिणी सेना लेकर दिग्विजय के लिए चला। रास्ते में, एक रम्य और आनन्द-दायक बाग मिला। मैंने, सेना सहित उस बाग में विश्राम किया और फिर चला गया। जब मैं दिग्विजय कर वापिस लौटा, तब फिर उसी बाग के मार्ग से आया। उस समय मैंने देखा, कि जो बाग पथिक को आल्हाद-दायक था, वह इस समय सूखा पड़ा है। बाग की यह दशा देखकर, मुझे

मनुष्य शरीर के विषय म भी अनेक विचार हुए। मैं सोचने लगा, कि यह सु दर मनुष्य शरीर, यौवन बीत जाने पर किस प्रकार क्षीण हो जाता है। जो लोग, यौवन म जिस शरीर से प्रम करते हैं, वही वृद्धावस्था आने पर और शरीर के रोग-ग्रस्त होने पर, किस प्रकार घृणा करने लगते हैं। वास्तव म यह ससार ही अस्थिर है, इसका कोई पदार्थ, या इसमें का कोई प्राणी, एक ही अवस्था म नहीं रह सकता।

राजन! इस प्रकार विचार करते करते मुझ, ससार से विरक्ति होगई। मरे हृदय म वैराग्य का अंकुर उत्पन्न हो गया। परिणाम यह हुआ कि मैंने, राज-पाट त्याग कर, चिंतामणि रत्न समान उज्वल और पवित्र चारित्र को स्वीकार कर लिया।

राजा विमलवाहन के हृदय म ससार की ओर से पहले ही विरक्ति सो हो रही थी। आचार्य अरिंदम का कथन सुनकर, उसे ससार से बिलकुल ही विरक्ति हो गई। उसने आचार्य से प्रार्थना की, हे दयासिंधु! मैं, नगरी मे जाकर राजपाट कुमार को सौंप, आपकी सेवा म फिर उपस्थित होऊँ, वहाँ तक आप यहीं विराजे रहिये। मेरा विचार, आपसे चारित्र स्वीकार करने का है। राजा की प्रार्थना के उत्तर में, आचार्य अरिंदम न फर्माया—राजन्! भव्य जीवो के कल्याण म सहायक होना ही हमारा काम है, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार है। तुम,

कार्य को श्रेयस्कर समझते हो, प्रमादरहित उसे शाघ्र करो।

राजा विमलवाहन, सुसीमा नगरी मे वापस आया। उसने, राजसिंहासन पर बैठ कर, अपने मन्त्रियो को बुलवाया और उनसे कहा—हे मन्त्रियो! आज तक आप मुझे राजभार वहन करने में सहायता करते रहे, लेकिन अब मेरी इच्छा, राजकुमार को सिंहासनारूढ़ करके दीक्षा लेने की है, अब आप लोग मुझे इस कार्य मे भी सहायता दीजिये। राजा ने, उसी समय राजकुमार को भी बुलवाया। राजकुमार के आ जाने पर राजा विमलवाहन ने, राजकुमार को सिंहासनारूढ़ कर, राजपाट उसे सौंप दिया और आप आचार्य अरिंदम क पास दीक्षा लेने के लिए चला। राजकुमार—जो अब राजा बन चुका था—ने अपने पिता का निष्क्रमणोत्सव किया। राजा विमलवाहन ने, आचार्य अरिंदम की सेवा में उपस्थित होकर, उनसे संयम स्वीकार किया और समिति गुप्ति आदि का पालन करते हुए, जनपद म विचरने लगे। मुनि विमलवाहन, चौथ, छट्ठ, अष्टम, एकावलि, रत्नावलि, कनकावलि आदि तप करने लगे और भगवान अरिहन्त सिद्ध के ध्यान म तल्लीन रहने लगे। इस प्रकार विशुद्ध भावना से उन्होंने, तीर्थङ्कर नाम कर्म का सम्पादन किया। अन्त म अनशन करके, बाईसवें कल्प विजय विमान में अहमिंद्र

पदधारी देव हुए। वहाँ उन्होंने तत्तीस सागर तक उत्कृष्ट सुखों का अनुभव किया।

अन्तिम भव

इस जम्बूद्वीप के मण्डन रूप भरत क्षेत्र के बीचों-बीच में वैताढ्य पर्वत पड़ गया है, इससे भरतक्षेत्र के दो भाग हो गये हैं। दक्षिण भरतार्द्ध में, अयोध्या नाम की एक नगरी थी। अयोध्या नगरी, पृथ्वी की लक्ष्मी और स्वर्ग-सम्पदा से स्पर्द्धा करने वाली मानी जाती थी। वहाँ, इक्ष्वाकुकुल-भूषण-भगवान आदिनाथ के वंशज, जितशत्रु नाम के राजा, राज्य करते थे। जितशत्रु का असीम पराक्रमी छोटा भाई, सुमित्रविजय था, जिसे युवराज पद प्राप्त था।

महाराजा जितशत्रु की विजयादेवी नाम्नी पट्टरानी, शीलादि गुणों से युक्त थी। वह, पतिपरायणा भी थी, और स्त्रियोचित गुणों से पूर्ण होने के कारण, पति की कृपापात्रा भी थी।

अवसर्पिणी काल का चौथा आरा, आधे के लगभग व्यतीत हो चुका था। उस समय, वैशाख शुक्ला १३ की रात में—जब सब ग्रह उच्च स्थान पर थे—विमलवाहन मुनि का जीव, विजयविमान का आयुष्य समाप्त करके, विजयादेवी के गर्भ में आया। महारानी विजयादेवी, सो रही थीं। उन्होंने

कर के गर्भकल्याण-सूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देख कर, महारानी विजयादेवी जाग उठीं। स्वप्नों का विचार करके उन्हें बहुत हर्ष हुआ और व हर्षित हर्षित महाराजा जितशत्रु के शयनागार में आई। महाराजा जितशत्रु उस समय सो रहे थे। महारानी ने मधुर शब्दों के आलाप द्वारा, महाराजा को जगाया और अपने स्वप्न सुनाये। स्वप्नों को सुनकर, महाराजा भी प्रसन्न हुए। उन्होंने महारानी से कहा, कि स्वप्नों को देखते हुए, तुम्हारी कोख से महाभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। महाराजा की इस बात को, महारानी ने हर्ष एवं आदर सहित सुना और आनन्दित होती हुई, अपने शयनागार को लौट आई।

राजा जितशत्रु के छोटे भाई, युवराज सुमित्रविजय की रानी वैजयन्ती ने भी, उसी रात में महारानी विजयादेवी की ही तरह चौदह महास्वप्न देखे। अन्तर केवल इतना ही था, कि विजयादेवी के देखे हुए स्वप्न प्रशस्त थे और वैजयन्ती के साधारण। स्वप्न देखकर, वैजयन्ती भी जागृत हो उठी। पति के शयनागार में आकर वैजयन्ती ने, स्वप्नों का विस्तृत समाचार, सुमित्रविजय को सुनाया। स्वप्नों को सुनकर, सुमित्रविजय ने वैजयन्ती से कहा, कि इन स्वप्नों के प्रभाव से, तुम उत्तम पुत्र रत्न प्रसव करोगी। पति के कथन को सुनकर, वैजयन्ती हर्षित होती हुई महल में चली गई।

विजयादेवी और वैजयन्ती, दोनों ही वे स्वप्न देखने के पश्चात् शेष रात्रि, धर्मध्यान में व्यतीत की। प्रातःकाल, महाराजा जितशत्रु विजयादेवी के देखे हुए स्वप्नों का विचार कर रहे थे, इतने ही में युवराज सुमित्रविजय आये। बड़े भ्राता को प्रणाम करने के पश्चात् सुमित्रविजय, महाराजा जितशत्रु से कहने लगे पूज्य भ्राताजी! आज रात के अन्तिम भाग में आपकी अनुजवधू ने इस प्रकार के चौदह स्वप्न देखे हैं। आप स्वप्नशास्त्र के जानकार हैं, अतः इन स्वप्नों का विचार कीजिये। सुमित्रविजय की बात ने, महाराजा जितशत्रु को द्विगुण आनन्दित कर दिया। उन्होंने, तत्क्षण स्वप्न पाठकों को बुलाकर, उन्हें विजयादेवी एवं वैजयन्ती के देखे हुए स्वप्न सुनाये और स्वप्नों का फल पूछा। आपस में मन्त्रणा करके स्वप्नपाठक कहने लगे 'महाराज, स्वप्न शास्त्रानुसार जब तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं, तब उनकी माता, इस प्रकार के चौदह महास्वप्न देखती हैं। महारानी एवं युवराज्ञी ने भी, वे ही स्वप्न देखे हैं, किन्तु दो तीर्थङ्कर या दो चक्रवर्ती एक साथ जन्में, यह नहीं हो सकता। इसलिए महारानी और युवराज्ञी में से एक तीर्थङ्कर को और दूसरी चक्रवर्ती को जन्म देंगी। हमने, आप्त पुरुषों से सुन रखा है, कि भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् भगवान् अजितनाथ तीर्थङ्कर और [illegible] गा तथा विजयारानी के यहाँ जन्मेंगे।

अनुसार, महारानी विजया देवी तीर्थङ्कर की जन्मदात्री होंगी और युवराज्ञी वैजयन्ती देवी, चक्रवर्ती की माता होंगी ।'

स्वप्नपाठकों से स्वप्नों का फल सुनकर, महाराजा, युवराज, महारानी और युवराज्ञी आदि समस्त परिवार बहुत हर्षित हुआ। महाराजा जितशत्रु ने, स्वप्न पाठकों का खूब सम्मान किया और बहुत द्रव्य देकर, उन्हें विदा किया ।

विजयादेवी और वैजयन्तीदेवी, हर्ष सहित सावधानी से गर्भ का पोषण करने लगीं । उधर इन्द्रादि देवों को यह ज्ञात हुआ, कि तीर्थङ्कर भगवान गर्भ में पधारे हैं, इसलिए वे बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने, भगवान का गर्भ कल्याणोत्सव मनाया। अनेक देव देवी, माता विजयादेवी की सेवा में भी रहने लगे।

नव मास पूर्ण होने पर, माघ शुक्ला ८ की रात को रोहिणी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग मिलने पर, महारानी विजया देवी ने, हाथी के मुख्य लक्षण वाले, सुवर्णवर्णीय पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही, क्षणभर के लिये तीनों लोक में उद्योत हुआ, और नारकीय जीवों की ताड़ना भी बन्द हो गई। भगवान का जन्म होते ही, इन्द्रादि के आसन कम्पित हुए, जिससे अवधिज्ञान द्वारा उन्होंने भगवान का जन्म होना जान लिया। भगवान का जन्म जानकर, इन्द्रादि देव बहुत

प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी अपनी ऋद्धि सहित नियत स्थान पर उपस्थित होकर, भगवान का जन्मकल्याण मनाया।

भगवान का जन्म होने के कुछ ही समय पश्चात्, उसी रात में, युवराज्ञी वैजयन्ती देवी के भी, एक भाग्यशाली पुत्र जन्मा। विजयादेवी और वैजयन्तीदेवी, दोनों की परिचारिकाओं ने, एक ही समय में महाराजा जितशत्रु को, पुत्र जन्म की बधाइयाँ दीं। महाराजा जितशत्रु ने, दोनों परिचारिकाओं को बहुत द्रव्य देकर, उनका सम्मान बढ़ाया और दोनों पुत्रों का जन्मोत्सव धूम धाम से मनाया।

दोनों भाई, जितशत्रु के पुत्र भगवान अजितनाथ, और सुमित्र विजय के पुत्र सगरकुमार, पार्वतीय गुफा की लता के समान सुरक्षित रूप में बढ़ने लगे। दोनों ही, बाल्यावस्था से निकलकर, किशोरावस्था में प्रविष्ट हुए। उस समय, दोनों ही महान् तेजस्वी और अतुल बलवान थे। दोनों के शरीर सुन्दर, सर्वाङ्गपूर्ण स्वस्थ और ४५० धनुष ऊँचे थे।

कुमार अजितनाथ तो तीर्थङ्कर थे। तीर्थङ्कर, माता के गर्भ में ही तीनों ज्ञान सहित आते हैं, इसलिए कुमार अजितनाथ, सब कलाओं, शास्त्रों और विद्याओं के पारगामी थे, उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता न थी, सगरकुमार, शुभ मुहूर्त में कलाचार्य के पास ...

लिए भेजे गये। इन्होंने, थोड़े ही समय में समस्त विद्यायें सीखलीं और सब कलाओं के भी पारगत हो गये। इतना ही नहीं, किन्तु वे विनयादि समस्त गुणों से भी भूषित हो गये।

कुमार अजितनाथ की, समय समय पर अनेक देव देवी सेवा करने के लिये आया करते थे। इन्द्र और देवों की सम्मति से, एक समय, महाराजा जितशत्रु, अजितकुमार से कहने लगे हे वत्स! हम तुम्हारा विवाहोत्सव देखना चाहते हैं, हमारी यह अभिलाषा पूरी करो। यद्यपि कुमार अजितनाथ तीर्थङ्कर थे, और भविष्य में संसार बन्धन को सर्वथा त्यागना था, फिर भी, भोग का फल देनेवाले कर्म शेष हैं, यह जानकर कुमार अजितनाथ, पिता की बात पर चुप रहे। महाराजा जितशत्रु ने, विवाहोत्सव करके, अजितकुमार और सगरकुमार के साथ अनेक राजकन्याओं का विवाह कर दिया। भोग का फल देनेवाले कर्मों को खपाने के लिए, कुमार अजितनाथ, अपनी रानियों के साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगे। सगरकुमार भी, अपनी रानियों के मध्य उसी प्रकार जीवन व्यतीत करने लगे, जिस प्रकार हथिनियों के मध्य में हाथी। इस तरह अठारह लाख पूर्व बीत गये। महाराजा जितशत्रु और युवराज सुमित्र विजय को, संसार से वैराग्य हो गया, इसलिए इन दोनों ने, राज्य का भार कुमार अजितनाथ को सौंप दिया, और आप दोनों, भगवान ऋषभदेव के शासन

के स्थविर मुनि के पास, संयम में दीक्षित हो गये। अन्त में दोनों भाइयों ने, अपने-अपने कर्म क्षय कर दिये और दोनों ही, मोक्ष पधार गये।

महाराजा अजितनाथ ने, सगरकुमार को अपना युवराज बनाया और निर्विघ्न रूप से राज्य चलाने लगे। जहाँ के राजा स्वयं तीर्थंकर हों, वहाँ के सुखों का तो कहना ही क्या! प्रजा, सुखपूर्वक रहती थी। इस प्रकार राज्य करते हुए, महाराज अजितनाथ को त्रैपन लाख पूर्व बीत गये।

एक दिन महाराजा अजितनाथ, राजकार्य से निवृत्त हो, एकान्त में बैठकर विचार करने लगे। अन्त में उन्होंने यह निश्चय किया, कि मेरे भोग फल देने वाले कर्म बहुतांश में क्षय हो गये हैं, इसलिए अब मुझे गृहस्थाश्रम में रहना उचित नहीं, किन्तु चारित्र लेकर, धर्म का उत्थान एवं भव्य जीवों का कल्याण करना चाहिये। भगवान ने, इस प्रकार निश्चय किया ही था कि उसी समय, ब्रह्मकल्पवासी लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो! अब धर्म और तीर्थ प्रवर्ताइये। भगवान, स्वयंबुद्ध ही थे, इसलिए देवताओं की प्रार्थना को दृष्टि में रखकर अपने निश्चय के अनुसार, उन्होंने सगरकुमार को बुलवाया और उनसे कहा—'हे बन्धु! इस वंशागत राज्य का भार अब तुम स्वीकार करो। क्योंकि, मेरे

लिए चारित्र ग्रहण करने का समय आ गया है।' ज्येष्ठ भ्राता की बात सुनकर, सगरकुमार, आँखों से जल बहाते हुए भगवान से कहने लगे—'हे प्रभो! कहीं मुझ से कोई अपराध तो नहीं हुआ है, जो आप मुझे त्याग रहे हैं? जब आप राजा हैं, तब मैं युवराज के रूप में आपकी सेवा करता हूँ, फिर अब आपके चारित्र लेने पर, मैं आपकी सेवा से क्यों विमुख रहूँ? आपके चारित्र लेने पर भी, मैं आपका शिष्य बनकर आपकी सेवा करूँगा।' भगवान ने उत्तर दिया—वत्स! तुम्हारे लिए अभी चारित्र ग्रहण करने का समय नहीं आया है, क्योंकि तुम्हारे भोगफल देनेवाले कर्म अभी शेष हैं। भोगफल देनेवाले शुभ कर्मों को निःशेष कर, समय आने पर चारित्र लेना। ज्येष्ठ भ्राता की यह आज्ञा सुनकर, सगरकुमार चुप रहे।

महाराजा अजितनाथ ने, सगरकुमार का, विधिपूर्वक राज्याभिषेक करके, राजभार उन्हें सौंप दिया और आप, वार्षिकदान देने लगे। वार्षिकदान देते एक वर्ष बीत जाने पर, इन्द्रों के आसन कम्पित हुए। उन्होंने अवधिज्ञान द्वारा, भगवान का दीक्षा कल्याण का समय जान लिया, और परिवार सहित अयोध्या में आ, भगवान को प्रणाम कर, भगवान के निष्क्रमणोत्सव की तैयारी की। इन्द्रादि देव तथा सगरादि नरेन्द्रों ने, भगवान का अभिषेक करके, उन्हें, दिव्य वस्त्रालंकार पहनाये और

सुप्रभा शिविका में आरूढ़ किया। शिविकारूढ़ भगवान, देव तथा मनुष्यवृन्द से घिरे हुए, अयोध्या के बाहर सहस्राम्र बाग में पधारे। बाग में पहुंचकर और शिविका से उतर कर, भगवान ने, सब वस्त्राभूषण त्याग दिये। पश्चात, अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके, माघ शुक्ल ९ के दिन—जब चन्द्र रोहिणी नक्षत्र में आया था—भगवान ने, सब सावद्य-त्याग रूप दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही, भगवान को मन पर्यय ज्ञान हुआ। इस अवसर पर, नारकीय जीवों को भी प्रसन्नता हुई।

भगवान के साथ ही, एक सहस्र राजाओं ने भी दीक्षा ली। इन्द्रादि देव और सगर राजा ने, भगवान को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके, सगर राजा तो अपने स्थान को गये और इन्द्रों ने, नन्दीश्वर द्वीप में जा अष्टान्हिका महोत्सव मनाया, पश्चात् अपने अपने स्थान को गये। इस प्रकार भगवान का दीक्षा कल्याण हुआ।

दीक्षा ग्रहण करके, भगवान, अपने साथी मुनियों सहित अन्यत्र विहार कर गये। दूसरे दिन राजा ब्रह्मदत्त के यहाँ, भगवान का, छट्ठ तप (बेला) का पारणा हुआ। भगवान का पारणा होने से, देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने, दान की महिमा प्रकट करने के लिए साढ़े बारह क्रोड़ स्वर्ण मुद्रा की वर्षा की आदि पाँच दिव्य प्रकट किये।

भगवान, समिति गुप्ति का पालन एवं अप्रतिबन्ध विहार करते हुए, देह की ओर से भी निर्ममत्व होकर, बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था में अनेक उपसर्ग सहते हुए विचरते रहे। इतने काल में वे, पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा कर चुके थे। पश्चात् भगवान, विचरते विचरते अयोध्या नगरी के उसी सहस्राम्रवन में पधारे। वहां सप्तच्छेद नाम के वट वृक्ष के नीचे, कायोत्सर्ग करके भगवान्, ध्यान में निमग्न खड़े रहे। इस ध्यान के द्वारा भगवान, सप्तम अप्रमत्त गुण स्थान से अपूर्व करण करके, आठवें नववें और फिर दसवें गुण स्थान में पहुँचे और उन्होंने, पहले मोह कर्म तथा फिर ज्ञानावरणीय आदि तीन कर्म नष्ट किये। इस प्रकार पौष शुक्ला एकादशी के दिन—जब चन्द्र रोहिणी नक्षत्र में था—भगवान् अजितनाथ को केवलज्ञान एवं केवल-दर्शन प्राप्त हुए।

केवल ज्ञान की महिमा, अगम्य है। जो महापुरुष केवल-ज्ञानी होते हैं, वे, तीनों लोक के त्रिकालवर्ती भावों को, हस्त-रेखा के समान देखते एवं जानते हैं।

भगवान् अजितनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, यह जानकर, अच्युतादि चौसठ इन्द्र एवं असंख्य देव देवी, भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई। भग-

वान् अजितनाथ, अष्ट प्रातिहार्य्य चौंतीस अतिशय आदि जिनेश्वर की विभूति से युक्त होकर, समवशरण में विराजे।

उद्यान रक्षक द्वारा, भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त होने का शुभ समाचार, सगरचक्रवर्ती को प्राप्त हुआ। यह शुभ समाचार सुनकर, सगरचक्रवर्ती बहुत हर्षित हुए। उन्होंने, साढ़े बारह क्रोड स्वर्णमुद्रा, यह समाचार लानेवाले उद्यान-रक्षक को पुरस्कार स्वरूप दीं और आप, अजितनाथ भगवान् के दर्शन करने को चले। सहस्राम्र उद्यान के समीप पहुँच कर, सगरचक्रवर्ती ने, पाँच अभिगमन किये और भगवान की सेवा में उपस्थित होकर, भगवान की वन्दना करके समवशरण में बैठे। भगवान ने, भव-भ्रमण रूपी व्याधि का नाश करनेवाली औषधि के समान उपदेश सुनाया, जिससे सहस्रों नर नारी ने बोध पाकर, भगवान से संयम स्वीकार किया। फिर भगवान, सहस्राम्र वन से विहार कर गये।

एक समय, जिनेश्वर अजितनाथ, कौशाम्बी नगरी के समीप पधारे। वहाँ एक ब्राह्मण ने भगवान से पूछा—प्रभो! यह एसे कैसे? भगवान ने उत्तर दिया, यह सब सम्यक्त्व की महिमा है। उस समय वहाँ उपस्थित भगवान के प्रधान गणधर सिंहसेन मुनि, यद्यपि सर्वाक्षर सन्निपाती होने के कारण, ज्ञान द्वारा इस गूढ़ प्रश्नोत्तर को जान गये थे, फिर भी, भव्य जीवों के कल्याणार्थ उन्होंने भगवान से पूछा—स्वामिन्! इस ब्राह्मण ने क्या पूछा और

आपने क्या उत्तर दिया ? स्पष्ट कहने की कृपा करें। भगवान फर्माने लगे, कि—इस नगर के सन्निकट, एक शालिग्राम नाम का गाँव है। वहां, दामोदर नाम का एक ब्राह्मण रहता था। दामोदर की स्त्री का नाम, सोमा था। इनके शुद्धभट्ट नाम का पुत्र था, जिसका विवाह सुलक्षणा नाम की स्त्री के साथ हुआ था। शुद्धभट्ट और सुलक्षणा, आनन्द से सांसारिक भोग भोगने लगे। थोड़े समय में, दामोदर और उसकी पत्नी सोमा, परलोकवासी हुए। शुद्धभट्ट, माता पिता विहीन होने के थोड़े ही समय पश्चात धन वैभव से भी हीन हो गया। पत्नी सहित शुद्धभट्ट, दरिद्रावस्था भोगने लगा। दरिद्रता के कष्ट से दुःखित होकर लज्जावश शुद्धभट्ट, अपनी पत्नी से बिना कुछ कहे ही विदेश चला गया। सुलक्षणा, दरिद्रता के साथ ही पति वियोग के दुःख से दुःखित रहने लगी। उन्हीं दिनों में वर्षा काल एक स्थान पर व्यतीत करने के अभिप्राय से, विपुला नाम की एक आर्यिका, सुलक्षणा के यहाँ आई। सुलक्षणा ने, विपुला साध्वी को अपने यहाँ चातुर्मास बिताने के लिये स्थान दिया और आप, साध्वीजी की नियमित रूप से सेवा करने लगी। साध्वीजी का उपदेश सुन कर और धर्म की श्रेष्ठता जान कर सुलक्षणा ने, विपुला साध्वीजी से सम्यक्त्व ग्रहण करने के साथ ही, बारह व्रत भी स्वीकार किये।

वर्षाकाल समाप्त होने पर, साध्वीजी चली गई। परन्तु सुलक्षणा धर्मश्रद्धा पर दृढ रही और श्रावक व्रत का पालन करती रही। धर्म सेवा में लीन रहती हुई उसने, दारिद्रय एव पति वियोग क कष्टों की भी कुछ पर्वाह न की।

सुलक्षणा का पति गुद्धभट्ट, विदेश स द्रव्योपार्जन करके अपन घर लौटा। घर लौटकर उसने सुलक्षणा स कहा, कि हे प्रिय! मैं जब यहां था, तब तो तुम मेरा किंचित भी वियोग नहीं सह सकती थीं, फिर तुमने मेरे वियोग का इतना लम्बा समय कैसे निकाला? सुलक्षणा न उत्तर दिया, प्राणनाथ! मैं आपक वियोग स उसी प्रकार व्याकुल थी, जिस प्रकार जल के वियोग स मछली व्याकुल रहती है, लेकिन एक साध्वीजी यहां पधारी थी और उन्होंने अपन ही गृह म चातुर्मास बिताया था। मैंने उनका उपदेश सुना। उनके दिये हुए धर्मोपदेश स मुझे बहुत शांति मिली और मैं, आपके वियोग का दुःख धैर्य-पूर्वक सहन करने में समर्थ हो सकी। मैंने उनसे, सम्यक्त्व सहित श्रावक के द्वादश व्रत भी स्वीकार किये। इनके आराधन म ही मैं, इतना समय बिताने म समर्थ हो सकी।

गुद्धभट्ट ने पत्नी की बात सुन कर कहा—हे भद्रे! सम्यक्त्व किसे कहते हैं और उससे क्या लाभ होते हैं? सुलक्षणा कहने लगी, [illegible] देव म देवबुद्धि, सद्गुरु में

और शुद्धधर्म में ही धर्मबुद्धि, सम्यक्त्व के अंग हैं। कुदेव में देवबुद्धि, कुगुरु में गुरुबुद्धि और अधर्म में धर्मबुद्धि विपर्यय भाव होने से मिथ्यात्व कहलाता है। सर्वज्ञ, रागादि दोषरहित त्रैलोक्य पूज्य और यथार्थ अर्थ के प्ररूपक अरिहन्त भगवान ही देव हैं। उनका ध्यान करना, उनकी उपासना करना और उनकी शरण प्राप्त करना ही कल्याणकारक है। इसी प्रकार महाव्रतों के धारक, भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले निरन्तर सम भाव में प्रवर्तन वाले और कंचन कामिनी के त्यागी अनगार ही गुरु हैं। दुर्गति में पड़ने से बचावे, वही धर्म है। इस धर्म के दस भेद हैं।

सम्यक्त्व सम, सम्वेग, निर्वेद अनुकम्पा और आस्तिकता इन लक्षणों के सद्भाव से, और शंका कांक्षा, विचिकित्सा परपाखंड प्रशंसा, और परपाखंड संस्तव (परिचय) इन दूषणों के अभाव से, पहचाना जाता है। इसी का नाम सच्चा समकित है।

समकिती पुरुष की बुद्धि, यथार्थ होती है। वह, जीवादि तत्वों को जानने लगता है, जिससे इस लोक में भी उसका जीवन शांति पूर्वक बीतता है और परलोक भी आनन्द-दायक होता है।

अपनी पत्नी से सम्यक्त्व का स्वरूप और उसके लाभ सुन

कर, शुद्धभट्ट बहुत प्रसन्न हुआ। सुलक्षणा की ही तरह, उसने भी सम्यक्त्व स्वीकार किया। दोनों पति-पत्नी, शुद्ध रीति से श्रावक व्रत पालते हुए आनन्द से रहने लगे।

उस शालिग्राम ग्राम में सच्चे साधुओं के संसर्ग का अभावसा था, इसलिये वहा के दूसरे लोग, शुद्धभट्ट एवं उसकी पत्नी के लिए अपवाद बोलने लगे। एक दिन शुद्धभट्ट, अपने पुत्र को गोद में लिये हुए, ब्राह्मणों की सभा में गया। सभा के ब्राह्मण, यज्ञवदी के समीप बैठे हुए थे। वे लोग, शुद्धभट्ट से कहने लगे कि तू श्रावक है, इसलिये यहाँ तेरा काम नहीं है, तू यहाँ से चला जा। ब्राह्मणों के कटु वचन सुन कर, शुद्धभट्ट को बहुत खेद हुआ। उसने, यह कहते हुए, कि 'जो जिनोक्त धर्म संसार समुद्र से तारक न हो, तीर्थंकर प्रभु आप्त देव न हों, और संसार से सम्यक्त्व का प्रभाव लुप्त हो गया हो, तो यह मेरा पुत्र अग्नि में भस्म हो जाय और यदि मैंने, सत्य धर्म एवं शुद्ध सम्यक्त्व ग्रहण किया हो तो अग्नि शान्त हो जाय।' अपने लड़के को अग्नि में फेंक दिया। उस समय, सन्निकट रही हुई समकित-धारिणी देवी ने बालक को ऊपर ही ऊपर में ले लिया और अग्नि शान्त कर दी। समकित का यह प्रभाव देख कर, सभा के सब ब्राह्मण बहुत आश्चर्यान्वित हुए।

शुद्धभट्ट, अपने पुत्र को लेकर घर आया। उसने, अपनी

स्त्री से सब वृत्तान्त कहा। उसकी स्त्री सुलक्षणा ने, अपने पति से कहा—नाथ! आपने बड़ी भारी भूल की थी। यदि उस समय वहां कोई सम्यक्त्व धारी देवी देव नहीं होता, तो बड़ा अनर्थ हो जाता। अग्नि में पुत्र के जल जाने पर, धर्म की निन्दा होती और जो सदा सर्वदा सत्य है, वह धर्म कलंकित होता। भविष्य में, आप ऐसा अविचार-पूर्ण कार्य कदापि न करें। सुलक्षणा के इस उपदेश से, शुद्धभट्ट धर्म में अधिक दृढ़ बना।

यह वर्णन करके भगवान अजितनाथ ने, गणधर सिंहसेन मुनि से कहा, कि इसी विषय में इस ब्राह्मण ने प्रश्न किया था। यह कह कर, भगवान वहाँ से विहार कर गये।

भगवान श्री अजितनाथ, केवली पर्याय में बारह वर्ष कम एक लाख पूर्व तक विचरते और भव्य जीवों का कल्याण करते रहे। अजितनाथ भगवान के नब्बे गणधर, एक लाख मुनि, तीन लाख तीस हजार साध्वी, दो लाख अठ्यान्वे हजार श्रावक और पाँच लाख पैंतालीस हजार श्राविकाएँ थीं। अपना निर्वाण-काल समीप जानकर भगवान अजितनाथ, एक हजार मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर पधार गये। सम्मेत शिखर पर भगवान ने 'पादोपगमन' नाम का संथारा किया, जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में चैत्र शुक्ला ५ को—जब चन्द्र, मृगशिर नक्षत्र में

आत्मा—भगवान ने, अयोगी अवस्था में प्राप्त हो, चार अघातिक कर्म क्षय किये और फिर सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

भगवान अजितनाथ, अठारह लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे। एक सहस्र वर्ष अधिक त्रैपन लाख पूर्व तक राज्य किया। बारह वर्ष, छद्मावस्था में व्यतीत किये और बारह वर्ष न्यून एक लाख पूर्व केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार भगवान अजितनाथ ने, सब बहत्तर लाख पूर्व का आयुष्य पाया और आदिनाथ भगवान के निर्वाण को पचास लाख क्रोड सागर बीत जाने पर, भगवान श्री अजितनाथ का निर्वाण-कल्याण हुआ।

प्रश्न

१—भगवान अजितनाथ के माता पिता और काका काकी के नाम क्या क्या थे?

२—भगवान अजितनाथ का पारणा, किसके यहाँ हुआ था?

३—भगवान अजितनाथ, पूर्वभव में कौन थे और किस कार्य से तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा था?

४—समकित का क्या महात्म्य है?

५—आचार्य अरिंदम को किस कारण से वैराग्य हुआ था?

भगवान श्री संभवनाथ

प्रार्थना

श्लोक
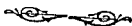
या दुलभा भव भृताम्भुवल्लरीव ।
मानामित द्रुमाहिमाभ जितारि जात ॥
श्री सम्भवेश ! भवभिद भवतोऽस्तु सेवा ।
ऽमाना मितद्रुमाहिमाभ ? जितारिजात ॥

भावार्थ—समुद की तरह सामा रहित महिमा करके सुशोभित जितारि राजा के नन्दन सम्भवनाथ ! आप मान रूपी वृक्ष को दग्ध करने में हिम समान हैं। आपकी सेवा संसाररूपी भव का नाश करनेवाली परन्तु प्राणियों को कल्पवृक्ष के समान दुलभ है।

पूर्व भव

जम्बूद्वीप के आगे लवण समुद्र है। लवण समुद्र के आगे वलयाकार धातकी खण्ड नामक द्वीप है। उस धातकी खण्ड द्वीपमें, क्षेमपुर नाम का एक नगर था। क्षेमपुर का राजा विपुलवाहन, न्यायी दयालु, प्रजा पालक और धर्मात्मा था। एक समय विपुलवाहन के राज्य में, दुष्काल पड़ा। अधिकांश प्रजा, अन्न के अभाव से दुःख पाने लगी और अन्न के लिये, इधर उधर भटकने लगी। राजा विपुलवाहन से, प्रजा का यह दुःख न देखा गया। उसने अपने कर्मचारियों से कहा, कि कोठार में अन्न भरा है और प्रजा अन्न के लिये कष्ट उठा रही है। यदि इस समय भी कोठार के अन्न का उपयोग न किया गया, तो फिर कोठार किस काम का? इसलिये कोठार का अन्न, क्षुधा पीड़ित प्रजा में बाँट दो।

कोठार का अन्न, भूखी प्रजा में बँटवाने के साथ ही, राजा विपुलवाहन ने, अपने पाकगृह में से, मुनियों को प्रचुर एवं प्रासुक आहार देने और श्रावकों को भोजन करवाने की भी आज्ञा दी। उसने केवल आज्ञा ही न दी, किन्तु वह मुनि आदि को अपने हाथ से आहार देने लगा। इस प्रकार वह दुष्काल भर अन्नदान और उत्कृष्ट भाव से चतुर्विध संघ की

सेवा भक्ति करता रहा एवं प्रजा को शान्ति देता रहा। इस कार्य के द्वारा उसने, उत्कृष्ट पुण्य उपार्जन किया।

एक समय राजा विपुलवाहन, अपने महल की छत पर बैठे थे। उन्होंने वहाँ बैठे बैठे यह देखा, कि मेघ की घटा आकाश-मण्डल को आच्छादित कर रही है, इतने ही में प्रतिकूल पवन से वह छिन्न भिन्न और थोड़ी ही देर में लुप्तप्राय हो गई। मेघ घटा की दोनों दशा देखकर, महाराजा विपुलवाहन को बड़ा विचार हुआ। वे सोचने लगे, कि जिस प्रकार यह मेघ घटा देखते-ही देखते बढ़ी और विनष्ट हो गई, इसी प्रकार सांसारिक सम्पत्ति भी देखते-ही देखते बढ़ती और विनष्ट हो जाती है। ऐसा होते हुए भी, मोह के वशीभूत बने हुए प्राणी, संसार के क्षणभंगुर पदार्थों को अविनाशी मानकर, उन्हें पकड़े रहने की चेष्टा करते हैं। उनकी इस चेष्टा के परिणाम-स्वरूप उन्हें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। मुझे उचित है, कि मैं आयुष्य बल के विद्यमान रहते हुए, एवं शरीर स्वस्थ और इन्द्रियों के शक्ति-सम्पन्न रहते ही आत्मा का कल्याण कर लूँ। अन्यथा अन्त में, पश्चात्ताप के सिवा कुछ शेष न रहेगा।

इस प्रकार विचार कर राजा विपुलवाहन ने, राज-भार अपने पुत्र को सौंप दिया और आप, स्वयंप्रभ आचार्य के समीप, संयम में प्रव्रजित हो गये। संयम में प्रव्रजित होकर

विपुलवाहन ने, अनेकप्रकार के तप, परिषह तथा उपसर्गों का सहन और बीस बोल की आराधना करके, तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। अन्त में, सातवें ग्रैवेयक में २७ सागर की स्थितिवाले अहमिन्द्र देव हुए।

अन्तिम भव

इसी जम्बूद्वीप के भरतार्द्ध में, चतुर्थ आरे का एक पच-माश काल शेष था तब, श्रावस्ती नाम का एक रमणीय नगरी थी, जो अपनी छटा में स्वर्ग का स्पर्धा करती थी। वहाँ, जितारि नाम के महाभुज राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम, सैन्यादेवी था। सैन्यादेवी, गुण रूप में अप्रतिम एवं पति-परायणा थीं।

सातवीं ग्रैवेयक का आयुष्य समाप्त करके, विपुलवाहन का जीव, फाल्गुन शुक्ल ८ की रात को—जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र के साथ था—महारानी सैन्यादेवी के गर्भ में आया। सैन्यादेवी, उस समय अपनी मनोहर शय्या पर शयन किये थीं। निद्रावस्था में सैन्यादेवी ने, तीर्थंकर के गर्भकल्याण सूचक चौदह महा स्वप्न देखे। स्वप्नों को देख कर महारानी सैन्यादेवी, जाग

और स्वप्नों का स्मरण करके बहुत हर्षित हुईं। वे शय्या से उठकर, महाराजा जितारि के शयनागार में आईं और महाराजा जितारि को जगा कर, उन्हें अपने स्वप्न सुनाये। सैन्यादेवी के स्वप्नों को सुनकर, महाराजा जितारि भी बहुत हर्षित हुए। उन्होंने, सैन्यादेवी से स्वप्नों का यह फल बताया, कि तुम्हारी कोख से महा भाग्यशाली पुत्र होगा। स्वप्नों का फल सुन कर महारानी सैन्यादेवी, हर्ष सहित अपने शयन मन्दिर में लौट आईं।

महाराजा जितारि ने, प्रातःकाल स्वप्न-पण्डितों को बुला के उनसे सैन्यादेवी के देखे हुए स्वप्नों का फल पूछा। स्वप्नपाठकों ने कहा, कि महारानी, त्रिलोकपूज्य पुत्र प्रसव करेंगी। यह सुनकर, महाराजा जितारि बहुत प्रसन्न हुए और पण्डितों को पारितोषिक देकर विदा किये।

महारानी सैन्यादेवी, यत्नपूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं। नौ मास साढ़े सात रात बीतने पर, मार्गशीर्ष शुक्ला १४ के दिन जब चन्द्र मृगशिर नक्षत्र में आया—महारानी सैन्यादेवी ने कंचन वर्णी, एक सहस्र आठ लक्षणों के धारक और अश्व के चिन्ह वाले पुत्र को जन्म दिया। छप्पन दिक्कुमारिका, चौंसठ इन्द्र और असंख्य देव देवों ने, सुमेरु गिरि पर भगवान का जन्म-कल्याण मनाया। महाराजा जितारि ने भी, बड़ी धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव किया और पुत्र का नाम सम्भवकुमार रखा।

अनक देवी देव से सेवित भगवान सम्भवकुमार, द्वितिया के चन्द्र समान वृद्धि पाने लगे। भगवान, जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे, इसलिए उन्हें किसी से विद्या कला आदि सीखने की तो आवश्यकता ही न थी।

भगवान सम्भवकुमार, किशोरावस्था को प्राप्त हुए। किशोरावस्था में, उनका प्रमाणयुक्त चार सौ धनुष ऊँचा शरीर, भरन रूप लावण्य से स्वर्णकान्ति को भी पराजित करता था। भगवान सम्भवकुमार से महाराजा जितारि और महारानी सैन्यादेवी ने कहा—हे पुत्र! हम तुम्हारा विवाहोत्सव देखने की इच्छा रखते हैं, हमें तुम्हारा विवाह करने की अनुमति दो। भगवान अपने ज्ञानादि से जानते थे, कि भोगफल देनेवाले कर्म खपाना शेष हैं, इसलिए वे, माता पिता की बात सुनकर मौन रहे। भगवान की अनुमति समझ, महाराजा जितारि ने अनेक समवयस्का और लावण्यवती युवतियों के साथ, सम्भव कुमार का विवाह कर दिया। पत्नियों सहित, सम्भवकुमार आनन्द से रहने लगे। लगभग १५ लाख पूर्व भगवान को कुमार पद में बीते होंगे, उस समय, महाराजा जितारि को संसार से वैराग्य हो गया। वे, राजपाट सम्भवकुमार को सौंप कर संयम में प्रव्रजित हो गये और उन्होंने आत्मकल्याण किया।

महाराजा सम्भवनाथ, न्यायपूर्वक राज्य करने और प्रजा

को उन्नत एव सुखसमृद्ध बनाने लगे। महाराजा सम्भवनाथ को जब इसी प्रकार राज्यावस्था में ४४ लाख पूर्व बीत चुके, तब वे, एकान्त स्थान पर बैठ विचार करने लगे। उन्हें विचार हुआ, कि ससार के कार्य न तो कोई समाप्त कर ही सका है न कर ही सकता है, केवल प्रपचों म ही फँसे रहता है। इस मनुष्य शरीर को सासारिक प्रपचों म ही लगाये रहना, इसके द्वारा परमार्थ न करना और अन्त में दुर्गति में पड़ना, बड़ी भारी मूर्खता है। इसलिए मुझे अब, आत्म-कल्याण का मार्ग अपना कर, भव्य जीवों को धर्म मार्ग में लगाना चाहिये।

भगवान न इस प्रकार का निश्चय किया, इतने ही में ब्रह्म-लोकवासी सारस्वतादिक लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की—हे प्रभो! अब धर्म तीर्थ प्रवर्ताइये। देवताओं की प्रार्थना और अपने निश्चय के अनुसार, भगवान ने, राजपाट अपने पुत्रों को सौंप दिया और आप वार्षिक दान देने लगे।

भगवान, नित्य प्रति एक क्रोड़ आठ लाख सोनैय, सवा पहर दिन चढ़ने तक दान देते रहे। दान देते देते जब एक वर्ष समाप्त हो गया, तब इन्द्र तथा देवी देव भगवान की सेवा में उप-स्थित हुए। इन्होंने, भगवान का दीक्षाभिषेक करके, भगवान को वस्त्रालङ्कार पहनाये। पश्चात् भगवान को, सिद्धार्थ नाम की पालकी में बैठाया। शिविकारूढ़ भगवान, असख्य देव और

मनुष्यों के वृन्द से घिरे हुए, श्रावस्ती नगरी के मध्य होकर, सहस्राम्र वन में पधारे। सहस्राम्र वन म पधार कर भगवान, शिविका स उतर पडे और सब वस्त्रालंकार भी त्याग दिये। फिर, बेला के तप में, मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन जब चन्द्र मृगशार नक्षत्र के साथ था—अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके भगवान ने, सर्व सावद्य योग के त्याग रूप सयम स्वीकार किया। दीक्षा लेते ही, भगवान् को मन पर्ययज्ञान हुआ। भगवान् के साथ ही राज-परिवार के एक सहस्र लोगों ने भी दीक्षा ली।

सयम म प्रवर्जित होकर भगवान, अन्यत्र विहार कर गये। दूसरे दिन सुरेन्द्रदत्त राजा के यहाँ, भगवान का पवित्रान्न से पारणा हुआ। भगवान का पारणा होने से, देवताओं ने, पाँच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की।

जगद्गुरु भगवान सम्भवनाथ, चौदह वर्ष तक छद्मस्थावस्था म, निर्ग्रन्थ धर्म का पालन करते हुए, अप्रमत्त रूप से अनेक ग्राम नगर में विचरते और भव्य जीवों का कल्याण करते रहे। इतने समय में भगवान ने, मनोगुप्ति, तप, और ध्यान के द्वारा, कर्मों की निर्जरा कर दी। शुद्ध भावना बढाकर, और अपूर्व करण करके भगवान, शुक्लध्यान ध्याने लगे। अन्त में, कार्तिक कृष्णा ५ को—जब चन्द्र मृगशार नक्षत्र म आया—क्षपक

पहुँचकर भगवान ने, घन घातिक कर्म नष्ट कर दिये और केवल ज्ञान प्राप्त किया।

भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, यह जान कर इन्द्रादि देव केवलज्ञान की महिमा करने के लिए उपस्थित हुए। इन्होंने, समवशरण की रचना की, जिसमें बैठकर बारह प्रकार की परिषद् ने, भगवान की भवनाशिनी वाणी सुनी। सर्व दुःखभंजनी भगवान की वाणी से, अनेक भव्य प्राणियों को संसार में विरक्ति हो गई और इन्होंने भगवान से संयम स्वीकार किया। बहुत से लोगों ने श्रावक व्रत और सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान संभवनाथ के, चारु आदि १०२ गणधर थे। दो लाख साधु थे। तीन लाख छत्तीस हजार साध्वियाँ थीं। दो लाख त्रान्वे हजार श्रावक थे और छ लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ थीं।

चार पूर्वांग और चौदह वर्ष कम एक लाख पूर्व तक भगवान केवली पर्याय में विचरते और दुःखी जीवों का उद्धार करते रहे। अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान, एक हजार मुनियों सहित, सम्मेत शिखर पर पधार गये और वहाँ, पादोपगमन नाम का अनशन किया। चैत्र शुक्ला ५ के दिन, जब चन्द्र मृगशिर नक्षत्र के साथ था, भगवान एक मास के अनशन में, मन वचन और काय के योगों को रूँधकर, शैलेशी अवस्था

में प्राप्त हुए और चार अघातिक कर्मों को नष्ट कर सिद्ध गति में पधार गये।

भगवान सम्भवनाथ, पन्द्रह लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे और चार पूर्वांग चवालिस लाख पूर्व, राज्य किया। चौदह वर्ष संयम लेकर छद्मस्थावस्था में रहे और चार पूर्वांग तथा चौदह वर्ष कम एक लक्ष पूर्व केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार भगवान ने सन साठ लाख पूर्व का आयुष्य पाया। भगवान अजितनाथ के निर्वाण को तीस लाख क्रोड़ सागर व्यतीत हुए थे, तब भगवान सम्भवनाथ निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

भगवान सम्भवनाथ निर्वाण पद को प्राप्त हुए, यह जानकर इन्द्र तथा देवता, निर्वाणोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए और निर्वाणोत्सव करके नन्दीश्वर द्वीप में जा, अष्टाह्निका महोत्सव मना अपने अपने स्थान को गये।
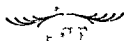
प्रश्न

१—राजा विपुलवाहन ने किस कार्य द्वारा तीर्थंकर नाम-गोत्र का सम्पादन किया था ?

भगवान श्री वासुपूज्य

प्रार्थना

श्लोक—

एनांसि यानि जगति भ्रमणार्जितानि
पर्जन्य दान ! वसुपूज्य सुतानघानि
त्वन्नाम तानि जनयति जनाजयन्ति
पज्ञ य दान ! वसुपूज्य सुताऽनघानि ॥

भावार्थ—मेघ के समान दानी तथा इन्द्र तथा दानवों के पूजनीय वसुपूज्य तात हे वासुपूज्य भगवान ! आपका नाम स्मरण करनेवाले लोग अनेक जन्मार्जित पुरातन पापों को नष्ट कर देते हैं।

पूर्वभव

पुष्कर द्वीपार्द्ध के महाविदेह क्षेत्र में, मंगलावती विजय के अन्तर्गत रत्नसंचया नाम की एक नगरी थी। वहाँ इन्द्रदत्त नाम का अति पराक्रमी राजा राज्य करता था। इन्द्रदत्त जिन

भक्त था। उसका हृदय, संसार से विरक्ति की ओर अधिक रहता था।

समय पाकर राजा इन्द्रदत्त ने, वज्रनाभ मुनि से संयम स्वीकार किया। संयम का पालन करते हुए इन्द्रदत्त ने, अर्हद्भक्ति एवं तीर्थंकर नाम कर्म योग्य २० बोलों के सेवन द्वारा, तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। बहुत काल तक निर्मल चारित्र का पालन करके, समाधि मरण द्वारा, प्राणतकल्प नाम के दसवें देवलोक में, बीस सागर के आयुष्यवाला महर्द्धिक देव हुआ।

अन्तिम भव

इस मध्य जम्बूद्वीप के इसी भरत क्षेत्र में, अंग देश के अन्तर्गत चम्पा नाम की एक सुहावनी एवं सुन्दर नगरी थी। वहाँ वसुपूज्य नाम का राजा था। वसुपूज्य के जया नाम की रानी थी, जो गुणरूप में, देव कन्याओं की स्पर्द्धा करने वाली एवं पति को सुख देने वाली थी।

इन्द्रदत्त राजा का जीव, प्राणत देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, ज्येष्ठ शुक्ला ९ की रात को—जब चन्द्र का योग शतभिषा नक्षत्र के साथ था—जयादेवी के उदरागार में आया। सुख निद्रा में सोई हुई महारानी जयादेवी, तीर्थंकर के गर्भसूचक

चौदह महास्वप्न देखकर जाग उठीं। पति को स्वप्न सुनाने पर, पति ने स्वप्न का जो फल बताया, वह सुनकर जयादेवी बहुत हर्षित हुई। वह यत्नपूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भकाल समाप्त होने पर, फाल्गुन कृष्णा १४ की रात को वरुण नक्षत्र के योग में, महारानी जयादेवी ने, महिष के चिह्न से युक्त माणिक्य जैसे लाल वर्ण वाले अनुपम पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही, त्रिलोक में क्षणिक उद्योत हुआ। छप्पन दिक्कुमारियाँ* भगवान के जन्मभवन में आईं। उन्होंने भगवान और माता को भक्तिपूर्वक वन्दन करके, नियमानुसार मंगलगान किया और वहाँ की भूमि को इन्द्र महाराज के आने योग्य विशुद्ध बनाई। पश्चात् शक्रेन्द्र महाराज परिवार सहित आये। उन्होंने, पहले भगवान के जन्मभवन की प्रदक्षिणा की और फिर माता एवं प्रभु को वन्दन कर, माता को अवस्वापिनी निद्रा दे, वे, भगवान को सुमेरु गिरि पर ले गये। वहाँ, इन्द्र और देवों ने, विधिपूर्वक भगवान का जन्म-कल्याण मनाया, और फिर भगवान को उनकी माता के पास रख कर अपने अपने स्थान को गये।

---

* दिक्कुमारियाँ भवनपति जाति की देवी हैं जो महर्द्धिक एवं स्वतन्त्र स्वामि व भोगता हैं। वे आठ पूर्व में, आठ पश्चिम में, आठ दक्षिण में, आठ उत्तर में, चार चार चारों विदिशा में और चार ऊर्ध्व लोक एवं चार अधो लोक में रहती हैं।

प्रात काल राजा वसुपूज्य ने, पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, बालक का नाम वासुपूज्य कुमार रक्खा। भगवान वासुपूज्य सुख-पूर्वक वृद्धि पाने लगे। युवावस्था प्राप्त होने पर भगवान का सत्तर धनुष ऊँचा, सर्वाङ्ग सम्पूर्ण लालवर्ण का शरीर, उदयाचल पर्वत पर निकले हुए सूर्य के समान शोभायमान लगता था। भगवान का रूप सौन्दर्य देखकर, अनेक राजा लोग अपनी अपनी कन्या, भगवान का देना चाहते थ, लेकिन भगवान के माता-पिता, भगवान से जब भी उनके विवाह की स्वीकृति चाहते, भगवान टालटूली किया करते, स्वीकार न करते। एक दिन, भगवान वासुपूज्य के माता-पिता, भगवान से आग्रहपूर्वक कहने लगे, कि-हे वत्स। वैसे तो आप जब से गर्भ म पधारे, तभी से हमारे यहाँ आनन्दोत्सव होते रहे हैं, लेकिन हमारे हृदय म, आपका विवाहोत्सव देखने की उत्कृष्ट अभिलाषा है। अत आप हम, विवाहोत्सव देखने का सुअवसर भी प्रदान करें, जिसमें हम, आपके साथ अपनी कन्याओं का विवाह करने की इच्छा रखनेवाले राजाओं की प्रार्थना स्वीकार कर सकें। इसके सिवा, अब हम वृद्ध भी हो चले हैं, सो वंश की परम्परा के अनुसार राजभार भी आप ही को उठाना होगा, इसलिए भी विवाह करना आवश्यक है। माता पिता की बात के उत्तर में, निर्विकार प्रभु मुस्कराकर कहने लगे—हे माता पिता! आपके वचन पुत्र प्रेम के उपयुक्त ही हैं

लेकिन मैं इस संसार रूपी अरण्य में, जन्म मरण करते करते थक गया हूँ। ऐसा कोई देश, नगर, ग्राम, स्मशान, नदी, पर्वत और समुद्र बाकी नहीं है, जहाँ मैंने जन्म-मरण न किया हो। अब मैं, इस जन्म मरण के कारण रूप काम भोग को काट डालना चाहता हूँ, इसलिए विवाह-बन्धन में पड़ने और राज भार स्वीकार करने की मेरी इच्छा नहीं है। आपको मेरा महोत्सव ही देखना है न? आप अपनी यह अभिलाषा, मेरा दीक्षा महोत्सव, केवलज्ञान महोत्सव और निर्वाण महोत्सव देखकर पूरी कर सकते हैं। भगवान का उत्तर सुनकर, माता पिता के नेत्रों में आँसू भर आये। वे, नेत्रों में जल भरकर कहने लगे—हे पुत्र! आप गर्भ में आये, उस समय आपके जन्म सूचक जो महास्वप्न देखने को मिले थे, उन पर से ही हमने यह तो समझ लिया था, कि आप जन्म-मरण का अन्त करने के लिये ही जन्म ले रहे हैं, लेकिन आप जन्म-मरण का अन्त तो तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन करने के साथ ही कर चुके हैं। आपका दीक्षा और केवल महोत्सव तो होगा ही, लेकिन इन महोत्सवों के पहले, आप हमें विवाहोत्सव करने की स्वीकृति दें, जिसमें हम, यह उत्सव भी देख सकें। यह बात आप तीर्थंकर के लिये नई न होगी, किन्तु ईक्ष्वाकुवंशोत्पन्न आदिनाथ भगवान—जो प्रथम तीर्थंकर थे—ने भी विवाह किया था और सृष्टि व्यवहार करने के साथ ही राज्य भार भी उठाया था।

पश्चात् समय पर दीक्षा लेकर मोक्ष पधारे ॥ । आदिनाथ भगवान के पश्चात् होने वाले भगवान अजितनाथ से श्रेयासनाथ तक के तीर्थंकरों ने भी, ऐसा ही किया था । इसलिये आप भी, उन्हीं की तरह पहले विवाह करिये, राज्य करिये और फिर दीक्षा लेकर मोक्ष पधारिये । प्रत्युत्तर में भगवान, नम्रता भरे शब्दों में कहने लगे—हे पिता ! इन पूर्व महानुभावों के चरित्र से मैं परिचित हूँ, लेकिन उन्होंने विवाह और राज्य, भोग फल देनेवाले, पूर्व सचित पुण्य-कर्म खपाने के लिये ही किया था । तीर्थंकर के लिये, विवाह एवम् राज्य करना आवश्यक नहीं है । जिनके पुण्य के दलिये अधिक होते हैं, उन्हें उन पुण्य-दलियों को भोगने के लिये विवाह तथा राज्य करना पड़ता है । क्योंकि जब तक शुभ एवम् अशुभ कर्मों को—विपाक या प्रदेश से—भोग न लिया जाय, मुक्ति नहीं हो सकती । मेरे, भोग फल देने वाले कर्म शेष नहीं हैं,

---

॥ उक्त चरित्र से स्पष्ट है, कि माता पिता सन्तान का विवाह करने में जबरदस्ती से काम नहीं ले सकते, किन्तु सन्तान की इच्छा पर, विवाह के साधन जुटाया करते हैं । आज देश और समाज के दुर्भाग्य से इसके विपरीत प्रवृत्ति हो रही है । यानी सन्तान विवाह की इच्छा करे इसके [illegible] उसका विवाह कर देते हैं । इतना ही नहीं

इसलिये मुझसे आप विवाह या राज्य करने का अनुरोध न करिये, किन्तु मुझे दीक्षा लेन की आज्ञा प्रदान करिये। भविष्य में उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ और बाईसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ भी मेरी ही तरह, बिना विवाह किये ही दीक्षा लेंगे और पार्श्वनाथ महावीर आदि भी बिना राज्य किये ही दीक्षा लेंगे। कर्मों की भिन्नता के कारण, सब तीर्थंकरों का एक ही मार्ग नहीं हो सकता। इसलिये आप चिन्ता रहित होकर, मुझे दीक्षा लेने की अनुमति दें।

माता पिता को समझा बुझाकर एवम् शांति देकर, अठारह लाख वर्ष की अवस्था में भगवान वासुपूज्य, दीक्षा लेने के लिये तैयार हुए। उसी समय, लोकान्तिक देवों ने भी, उपस्थित होकर धर्म तथा तीर्थ प्रवर्तान की, भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने वार्षिक दान देना प्रारम्भ कर दिया।

वार्षिक दान समाप्त होने पर, इन्द्र और देवताओं ने आकर भगवान का दीक्षाभिषेक किया। भगवान, पृथ्वी नाम की शिविका में आरूढ़ हो, मनुष्य तथा देवताओं से घिरे हुए वाजित्र एवम् जयध्वनि के मध्य चम्पानगरी के विहारगृह बाग में पधारे। वहां चउत्थ के तप में, फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को दिन के पिछले पहर में भगवान ने पंचमुष्टि लोंच करके छ सौ राजाओं के साथ दीक्षा धारण की। तुरन्त ही भगवान को मन पर्यय हुआ।

राज्ञा लेकर भगवान, चम्पानगरी से विहार कर गए। दूसरे दिन, महापुर में सुनन्द राजा के यहा भगवान का पारणा हुआ। देवों ने दान की महिमा की।

भगवान वासुपूज्य, अप्रतिबन्ध विहार करते हुए, पुन चम्पानगरी के उसी विहारगृह उद्यान में पधारे। वहा, पाटलवृक्ष के नीचे भगवान ने कायोत्सर्ग किया। घातिक कर्म क्षय होने से, माघ शुक्ला २ ❀ को भगवान को केवलज्ञान हुआ। भगवान को केवलज्ञान होते ही, त्रिलोक में क्षणिक प्रकाश हुआ। इन्द्र एवम् देवों ने उपस्थित होकर, केवलज्ञान की महिमा की। समवशरण की रचना हुई। द्वादश प्रकार की परिषद् ने, भगवान का कल्याणकारी उपदेश सुना। अनेक भव्य प्राणी, भगवान के उपदेश से बोध पाकर, सयम में दीक्षित हुए।

भगवान के सौधर्म आदि बासठ गणधर थे। बहत्तर हजार साधु थे। एक लाख साध्वियाँ थीं। दो लाख पन्द्रह हजार श्रावक थे और चार लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ थीं। भगवान वासुपूज्य एक मास कम चौपन लाख वर्ष तक, केवली पर्याय में विचरते और अनेक जीवों का कल्याण करते रहे।

❀ यदि भगवान वासुपूज्य, एक मास छद्मस्थ रहे, तो केवलज्ञान की तिथि ठीक नहीं ठहरती। अत यदि किन्हीं की कोई दूसरी धारणा हो तो सुधार लें।

केवलज्ञान होने के पश्चात् भगवान चम्पापुरी से विहार करके अनेक जनपद को पावन बनाते हुए, द्वारकापुरी पधारे। वहाँ भगवान उद्यान में विराजे। बाग रक्षक ने, द्विपृष्ट वासुदेव और विजय बलदेव को, भगवान के पधारने की बधाई दी। द्विपृष्ट, दूसरे वासुदेव और विजय, दूसरे बलदेव थे। इन्होंने, बधाई लाने वाले बाग रक्षक को, साढ़े बारह क्रोड़ रुपये पुरस्कार में दिये और आप अपनी ऋद्धि सहित भगवान वासुपूज्य को वन्दन करने गये। भक्तिपूर्वक भगवान को वन्दन करके, भगवान की अमोघवाणी सुनी। भगवान की अमोघवाणी सुन कर, श्रोताओं में से अनेकों ने संयम और अनेकों ने श्रावकव्रत स्वीकार किया।

अपना निर्वाणकाल समीप जान कर भगवान, छ सौ साधुओं सहित पुनः चम्पानगरी पधारे। चम्पानगरी में, भगवान वासुपूज्य ने अनशन करके सब कर्मों को क्षय कर डाला और आषाढ़ शुक्ला चौदस को मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान वासुपूज्य, अठारह लाख वर्ष तक घर में कुमार पद पर रहे। एक मास छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। भगवान वासुपूज्य ने सब बहत्तर लाख वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान श्रेयांसनाथ के निर्वाण को चउवन सागर बीतने पर, मोक्ष पधारे।

प्रश्न—

१—भगवान वासुपूज्य पूर्वभव में कौन थे ? कौनसी करणी की थी ? और फिर किस गति में, कितने काल का आयुष्य लेकर पधारे थे ?

२—भगवान के माता पिता का नाम क्या था और वे किस द्वीप के, किस क्षेत्र के एव किस देश के किस नगर में रहते थे ?

३—भगवान वासुपूज्य ने विवाह क्यों नहीं किया और राज्य भार क्यों नहीं स्वीकारा ?

४—भगवान की आयु दीक्षा लेने के समय कितनी थी ?

५—भगवान का पारणा कहाँ और किसके यहाँ हुआ था ?

६—भगवान के समकालीन वासुदेव बल्देव का नाम क्या था और वे कहा रहते थे ?

७—भगवान के साधु की भिन्न भिन्न सख्या क्या था ?

८—भगवान वासुपूज्य की जन्म तिथि, दीक्षा-तिथि, केवल-ज्ञान तिथि और निर्वाण तिथि बताओ।

९—भगवान का निर्वाण किस स्थान पर हुआ था ?

१०—भगवान वासुपूज्य के निर्वाण में और भगवान शीतल-नाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा था ?

उपसंहार

जैन सिद्धान्त कहता है कि "सुचिन्ना कम्मा सुचिन्ना फला भवन्ति दुचिन्ना कम्मा दुचिन्ना फला भवन्ति"। अच्छे कर्म के अच्छे फल और दुष्कर्म के बुरे फल आत्मा को अवश्य भोगने पड़ते हैं। जैन धर्म, कर्म सिद्धान्त को प्रधानता देता है, व्यक्ति विशेष को नहीं। जो जैसा करता है वैसा ही बन जाता है। इस संसार में तीर्थंकर भगवान उत्कृष्ट महापुरुष माने जाते हैं परन्तु वे भी तीर्थंकर पद को अपने कर्म से ही प्राप्त करते हैं। इसका मतलब यह है कि तीर्थंकर होने योग्य महान् पुण्य-प्रकृति का संचय करते हैं तभी तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर पद की प्राप्ति निम्नलिखित बीस बोलों का सेवन उत्कृष्ट भावों से करने पर होती है—

१ अरिहन्त, २ सिद्ध भगवान के गुणानुवाद करना, ३ प्रवचन की आराधना करना, ४ शास्त्रोक्त गुणों के धारक गुरु महाराज, ५ स्थविर, ६ बहुश्रुति, ७ तपस्वी के गुणग्राम करना, ८ प्राप्त ज्ञान का बार बार चिंतन मनन करना, ९ सम्यक्त्व की शुद्धि करना, १० गुरुजन का विनय करना, ११ कालोकाल प्रतिक्रमण करना, १२ अतिचार रहित व्रत का पालन करना, १३ धर्म शुक्ल ध्यान ध्याना, १४ बाह्याभ्यंतर तप करना, १५ अभय सुपात्रादि दान

देना, १६ गुरुजन एवं आश्रितों की सेवा (वयावच) करना १७ चारों तीर्थ की भक्ति करना, १८ नवीन ज्ञान सम्पादन करना, १९ सूत्र सिद्धान्तों का बहुमान करना, २० व्याख्यान व कार्य द्वारा जैन शासन को दिपाना ।

जो उपरोक्त बोलों का सेवन जितनी विशुद्ध भावना एवं उत्कृष्ट योगबल से करता है वही इस पद को प्राप्त कर लेता है ।

आपने तीर्थंकर भगवान के चरित्र पढ़ हैं। इसमें आपको यह दृढ़ता पूर्वक विश्वास हो गया होगा, कि पूर्वभव में इन महापुरुषों ने कैसी राज्य ऋद्धि एवं वैभव को त्याग कर, तप संयम का और इन बोलों का सेवन किया। इसी तरह हम भी भगवान तीर्थंकर के आदर्श को दृष्टि के समक्ष रखकर उनका अनुकरण करेंगे तो कल्याण मार्ग के पथिक बनेंगे। कल्याण मार्ग में आगे बढ़ने का हेतु है सम्यक् श्रद्धा और सम्यक् श्रद्धा का हेतु है, तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति । वही इस पुस्तक में है, अतः अभ्यास करके, ध्येय की सिद्धि में उद्यत बनें ।

इत्यम्